EXHAUSTIVE NOTES ON SKANDA GUPTA

For B. A. & F. A. classes of the Allahabad & Agra Universities.

Containing brief History of Hindi Dramas, Authors, Literary-sketch, Characterisation, Meanings of difficult words, Phrases & Idioms, Impertant & Short Explanations, Critical Notes, Allusions, Similies, Mataphors, References, Literary views, Prose orders & Important suggesstive Questions & Answers.

BY

SAHITYA RATAN,
PT. GAURI SARAN SHARMA KAUSHIK
M.A. LL.B. H. HONS. (PRABHAKAR)
Writer of Notes on
GADYA MUKTAHAR.

Edition.

...hed by :
... NATH & Co.
PUBLISHERS, BOOK-SELLERS & STATIONERS,
Near Tehsil, MEERUT.

THIRD EDITION. Price Rs. 1/8/-

"परिक्षार्थियों से दो बात"

कुञ्जियां लिखने की शैली कुछ ऐसी रही है, जिसके कारण बहुत से मनुष्यों की यह धारणा हो गई है कि उनमें व्यर्थ अपने दाम फैंकना है तथा समय को नष्ट करना है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि सभी कुछ संसार में त्याज्य नहीं है।

स्वयं छः वर्ष तक कोलिज में हिन्दी का छात्र रह लेने के कारण हमारा अनुभव हिन्दी के विद्यार्थियों की कठिनाइयों को समझने में कुछ समर्थ हो गया है।

एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् भी विद्यार्थी उसी प्राचीन रीति से अर्थ करते हैं तथा कवि और लेखकों का अध्ययन उनके साहित्यिक ढङ्ग से नहीं करते। कोलिज की परिक्षाओं में केवल जीवन घटनाओं के ज्ञान से काम नहीं चलता। प्रत्येक कवि तथा उसकी रचना का साहित्यक आलोचनात्मक अध्ययन करना पड़ता है। प्रत्येक प्रकार के दुरूह प्रश्नों का उत्तर देने के लिये प्रस्तुत रहना पड़ता है। बाल की खाल निकालकर गूढ़ अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः नोट्स में यह प्रवृत्ति होती है कि कठिन [illegible] छोड़ दिया जाता है। तथा निरर्थक बातें [illegible] दिया जाता है जिससे विद्यार्थियों [illegible]

सरल स्थलों का अर्थ और भी कठिन भाषा में दे दिया जाता है जो विद्यार्थियोंके लिये और भी कठिन हो जाता है। हमने अपने नोट्स में इन सब बातों का ध्यान रख कर इन न्यूनताओं को दूर करने का भरसक प्रयास किया है।

परीक्षाओं में जिस प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं वह उत्तर सहित पुस्तक के अन्त में दिये गये हैं। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह नाटक पहले बी० ए० की परीक्षा में आगरा यूनिवर्सिटी ने रक्खा था। अब भी यह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में बी० ए० में है, इस दृष्टि से हमने अन्त में कुछ कठिन प्रश्न भी दे दिये हैं जो इण्टर कक्षा के विद्यार्थियों केलिये कठिन हैं। अतएव उनसे घबड़ाना न चाहिये। अध्ययन करने पर वह भी सरल हो सकते हैं। अन्तिम पचास प्रश्न केवल बी० ए० के विद्यार्थियों की सुविधा को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं।

क्यों कि हमारे गद्य-मुक्ता-हार के नोटस का विद्यार्थियों ने हृदय से स्वागत किया। अतएव हमने स्कन्दगुप्त के नोट्स लिखने का साहस किया है। यदि इसका भी ऐसा ही आदर हुआ तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे।

मेरठ　　　　　　　　　　विनीतः—

२१ जनवरी १९३९　　　　गौरी शरण शर्मा कौशिक

स्कन्द गुप्त

की

कुञ्जी

प्रथम अङ्क

शब्दार्थ— स्कन्धावार=छावनी सेना के रहने का स्थान। साम्राज्य=राज्य। अधिकार-सुख=दूसरों को आधीनता में रखने का आनन्द। मादक=मत्त बना देने वाला। सार हीन=निःसार।

अधिकार... ... ...

अर्थ— दूसरों पर शासन करने का आनन्द मनुष्य को मदमस्त बना देता है किन्तु बुद्धिमत्ता की दृष्टि से देखने से वह सब कुछ तत्व रहित है।

नोट:— आगे चलकर स्कन्दगुप्त के चरित्र से प्रकट हो जावेगा कि वह विरक्त होने के कारण राजत्व को मादक तथा निःस्सार समझता है।

शब्दार्थ— नियात्मक=नियम बनाने वाला। कर्त्ता=सब कुछ करने वाला। स्पृहा=इच्छा। वेगार=व्यर्थ की बातें।

अपने को... ... ...है।

अर्थ— (मगध का युवराज स्कन्दगुप्त राज्य के प्रति उदासीन होनेके कारण कहता हैं) राजा अपने को नियम बनाने वाला तथा प्रत्येक राजकार्य का संचालन करने वाला समझाने के

कारण उस तीव्र इच्छा में वह भी कार्य कर जाता है जो उसे न करने चाहियें। (नवीन राजा होने के कारण स्कन्द में यह प्रकृति और भी तीव्र हो सकती है।

परिचारक = सेवक जन, नौकर चाकर। अस्त्रों में = फेंककर चलाये जाने वाले हथियार। जैसे तीर, गोली इत्यादि।

नोट— जो हथियार हाथ में लेकर लड़े जाते हैं वह शस्त्र कहलाते हैं जैसे तलवार। अधिकार-लोलुप = अधिकार पाने के लिये लालायित, राजा बनने बनने की तीव्र इच्छा रखने वाले।

उत्सवों .... है।

अर्थ—जो दशा उत्ससवों के अवसरों पर सेवकों की होती है कि प्रत्येक कार्य में उन्हीं को आज्ञा देकर झोंक दिया जाता है हर ओर से उन्हीं पर कार्य करने की पुकार पड़ती है तथा जो दशा युद्ध के अवसर पर ढाल की होती है जो प्रत्येक फेंककर चलाये हुये भाले, तीर आदि को रोकने के लिये आगे बढ़ा दी जाती है। (अपना अङ्ग बचाना चाहिय ढाल पर चाहे जो बीते, अपना कार्य निकलना चाहिये सेवक चाहे जितना भी पेल दिया जावे) ठीक वही दशा अधिकार पानेकी प्रबल इच्छा रखने वाले राजाओं की होती है। राज्य में उत्सव आदि के अवसरों पर सब उसी के कान खाते हैं कि अमुक कार्य किस प्रकार होता है क्यों कि यह भय रहता है कि कार्य तनिक भी उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जाय। इसी प्रकार युद्धके अवसरपर राजाको ढालकी भांति सदैव जागे रहना पड़ता है। जय विजय सब उसी के सिर मढी जाती है। सारांश यह है कि अधिकार-लोलुप राजा की दशा किसी भी प्रकार सेवक और ढालसे अच्छी नहीं कही जासकती तीनों एक ही श्रेणी में हैं।

नोट—उक्त पंक्तियाँ स्कन्दगुप्त की स्वगतोक्ति (soliloquy) है। उत्कृष्ट नाटककार नाटक के आदि में ही नाटक के अंतद्वंद की कुछ झलक दे देता है। प्रसाद जी ने यहाँ ऐसा ही किया है। युवराज स्कन्द मगध का भावी शासक है। वह मगध के राज्य की दशा देख रहा है। उसकी विमाता अनन्तदेवी तथा सौतेले भाई पुरगुप्त ने अधिकार पाने की लालसा से बहुत सी बेगार और सम्राट कुमार गुप्त की हत्यायें तक कीं। उसी की ओर यहां संकेत है।

हम तो...है।

भावार्थ— क्यों कि अभी तक तो युवराज होने के कारण तथा देशके लिये सदैव प्राण प्रस्तुत कर देने के कारण स्कंदगुप्त अपने को सैनिक की श्रेणी में ही परिणित करता है।

अभिवादन— सैनिक प्रणाम (Salute)।

प्रतिनिधि=नुमाइन्दा (Representative) स्थान पूरक। गरुड़ध्वज=गरुड़ के चिन्ह वाला मगध-राज का झंडा, पताका। सँचालन=सेनापतित्व, चलाना। नासीर-सेना=अग्रभाग की सेना (front vans) गरुड़ध्वज की छाया में=पताका के नीचे। स्तन्य=माता के स्तनों से पिया हुआ दूध। लेख माला=लेखकी पंक्तियां। शिप्रा=नदी लोले चचल आपकी...............है।

भावार्थ— तुम्हारी वीरता के प्रकट करने वाली शिप्रा नदी तथा समुद्र की चंचल तरङ्गे हैं जहाँ तक तुमने अपने बाहुबलसे मगध साम्राज्य को बढ़ा दिया है, टेढ़ी तरंगें शब्दों की भांति लहरित होकर यह प्रकट करके कि हम भी मगध साम्राज्य में पर्णदत्त के पराक्रम द्वारा सम्मिलित हैं मानों तुम्हारी वीरता को अङ्कित कर रही हैं।

पृष्ठ ४— उदासीनता = विमुखता । महाबलाधिकृत = सब से बड़े सेनापति (Commander inchief) स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया-मृत्यु के ग्रास बन गये । समरों के = युद्धों के । विजेता = जयी, जीतने वाले । प्रौढ़ = बूढ़े । विलास = विलासिता । मात्रा बढ़ गई है = अधिक हो गया है ।

त्रस्त = भयभीत । सम्मान = आदर । आतङ्क = भय । प्रकृति = प्रजा । आश्वासन = धैर्य । भावी = भविष्य में होने वाला ।

उत्तरदायित्व = अधिकार । प्रकृतिस्थ होइये = आपे में आइये अपनी स्वाभाविक परिस्थिति में हूजिये । परम महारक = आदर सूचक । अश्वमेध पराक्रम = यज्ञ करने के यश वाले ।

नोट— इस यज्ञ में अश्व छोड़ा जाता है । जब अश्व बीच में कहीं न रोका जाकर लौट आता है तो यज्ञ पूर्ण होता है तथा उससे यह प्रकट हो जाता है कि सब राजा की स्वाधीनता स्वीकार करते हैं । जो आधीन रहना नहीं चाहते वह अश्व को रोक कर राजा से युद्ध करते हैं ।

महेन्द्रादित्य = उपाधि (Title) । सुशासित = भली प्रकार शासन की हुई । सुपालित = श्रेष्ठ रीति से पाली हुई ।

पृष्ठ ५ सदृश = सरीखे, जैसे । प्रस्तुत = तत्पर । राष्ट्रनीति = राजनीति दार्शनिकता = फिलोसफी, सोचना ।

राष्ट्रनीति .... है ।

अर्थ— राज्यनीति केवल सोचने अथवा कल्पना करने से कोसों दूर की वस्तु है । उसमें कोरी विचार शक्ति से कार्य नहीं चलता । प्रत्यक्षवाद = स्पष्टतावाद, नेत्रसम्मुखता (reality) समस्या = विचाराधीन बात (Problem) ।

इस.. ....है।

राजनीति इस कारण दुसह अथवा कठिन है कि हमें इसमें अपनी कल्पना को कार्यरूप में परिणित करना पड़ता है जो कुछ हम विचारते हैं उसे प्रत्यक्ष कार्य में लाना पड़ता है। केवल वायु पुलावें इसमें कार्य नहीं करते।

उत्तरोत्तर=निरन्तर। दायित्व=कर्त्तव्य। अनायास=अचानक, बिना परिश्रम उठाये। व्यङ्ग=कटाक्ष। प्रमाण=सिद्धक बातें। प्रभाव अभी खोजना है। प्रभाव खोजने की आवश्यकता ही नहीं उसके चिन्ह स्पष्ट प्रगट हो चुके हैं। स्तम्भित=ठहर जाना, स्थिर। कदाम्बिनी=मेघ पँक्ति। आवरण=पर्दा। महाशून्य=ऊँचा आकाश।

नोट– जहाँ कुछ भी न हो अर्थात रिक्त स्थान हो उसे आकाश कहते हैं। इसी लिये आकाश का नाम शूना पड़ा है।

भावार्थ– जिस प्रकार आंधी आने से पूर्व उसकी सूचना देने के लिये आकाश धुँधला और स्थिर सा हो जाता है तथा बिजली गिरने से पूर्व नीले आकाश का सुन्दर पर्दा अर्थात् बादल पृथ्वी की ओर झुकने के स्थान पर और ऊँचे चढ़ जाते हैं उसी प्रकार गुप्त साम्राज्य की अवनति प्रकट करने वाले सूचक चिन्ह दृष्टि गोचर होने लगे हैं। इतिश्री=समाप्ति। चर=दूत। श्वेत हूण=White sterns। पदाक्रांत=दबाना। गले पड़ी=व्यर्थ का भार।

पृष्ठ ६– आयुस्यन=चिरञ्जीवी। अव्यवस्थित=अनियमित।

नोट– क्योंकि पर्णदत्त छोटा होनेपर भी राज्य पाने का यत्न कर रहा है था इसी लिये उत्तराधिकार नियम को अव्यवस्थित कहा है।

आधार = भित्ती (basis) । अनुमान = कोरा, विचार। अन्दाजा ।

अपनी..देना ।

भावार्थ—अपनी बाल्यकाल की चञ्चलता के कारण अनिर्मित उत्तराधिकार— नियम की बात खोल कर पुरगुप्त के षड़यंत्र का आभास देकर तुम स्वय अपने लिये विष का बीज बो दोगे। स्वयं तुम्हारे ऊपर राज्य की ओर से आपत्ति आजावेगी क्यों कि पुरगुप्त बदला लेने की चेष्टा करेगा।

व्यक्त = प्रकट । राजनीतिक..................जनता = हृदय की सीधी सच्ची बात कह देता है। राजनीति (politics) की हेर फेर वाली भाषा में नहीं कहता।

पृष्ठ ७— प्रयत्न = प्रयास । अन्तिम प्रयास = last effort. समस्त = सारी । सङ्कलित = एकत्रित । शरीरान्त = मृत्यु । साभिवादन = प्रणाम सहित । कौटुम्बिक = कुटुम्ब सम्बन्धी । नवागत = नई आई हुई । वाहिनी = सेना । सुरक्षित = safe ।

पृष्ठ ८— संरक्षक = रक्षा करने वाले । समस्या = दशा । विषय व्यवस्था = कठिन परिस्थिति (grave situation) । सीमित = बद्ध । बाध्य = बंधे हुये । शरणागत रक्षा = शरण में आये हुये की रक्षा करना । विश्राम = शान्ति, आराम । सन्नद्ध = तत्पर, प्रस्तुत, तैयार । उपयुक्त = योग्य ।

पृष्ठ ९— अनुमति = आज्ञा । आसन्न = उपस्थित, सिरपर आई हुई । विपद = विपत्ति । मङ्गल = कल्याण ।

पृष्ठ १०—परिषद = सभासद । परम भट्टारक = उपाधि । दक्षिणालय = लङ्का । उनकी..है ।

भावार्थ— विभीषण और सुग्रीव ही ने लङ्का का नाश कराया। विभीषण, घर के भेदी ने रावण की मृत्यु बताकर तथा सुग्रीव ने हनुमान अङ्गद आदि की वानरी सेना द्वारा लङ्का को राख की ढेरी करा दिया।

नोट— इस पृष्ठ से वार्तालाप हास्ययुक्त तथा विनोदात्मक हो चला है। गम्भीर बातें भी मीठी चुटकी के साथ लिखी गई हैं।

सम्राट ....वृद्ध ?

भावार्थ—जिस प्रकार राम युवराज की अवस्था में अधिक युद्ध किये किन्तु राजा होनेपर न्यून उसी प्रकार जब आप सम्राट् हो गये तो अब युद्ध की क्या चिन्ता ?

नोट— प्रत्येक बात में हास्य तथा व्यङ्ग है।

सत्ता = अस्तित्व (Existence)। लड्डू खाने वाले सुग्रीव = सरलता से कार्य करने वाला सुग्रीव। बाली को राम द्वारा मरवाया।

पृष्ठ ११— मन्त्रित्व = सलाह, सम्मति। मन्त्रणा = योजना। झंझटों = झगड़ों।

एक स्त्री..बना ले।

भावार्थ— कुमारगुप्त का अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी के हाथों की कठपुतली बनने की ओर संकेत। स्त्री के वशीभूत होकर सब कुछ उसकी आज्ञानुसार करना।

कल्याणकारिणी = मङ्गलप्रद। विवश = बेबश। दमन = दबाना। अन्तर्गत = भीतर में। प्रान्त = प्रदेश। मनु = मनुस्मृति के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि।

व्यवस्था = विवरण, पूरा ब्योरा, ढङ्ग।

पृष्ठ १२— स्वतत्व = अधिकार । बोल बाला = विजय । अक्षय = कभी समाप्त या नष्ट न होने वाला । तूणीर = तरकस । अक्षय मंजूसा = नित्यप्रति भोजन मांगने वाला पेट जिसके भर जाने पर ही शान्ति पड़ती है अन्यथा मनुष्य क्षुधा से व्याकुल रहता है ।

पद्मासन = दोनों पाँवों को एक दूसरे के ऊपर को निकाल कर आमने सामने की जंघाओं पर रख कर सीधा बैठना । स्कंधावार = छावनी । स्थापित = लगा हुआ । ससैन्य = सैना सहित । सहायतार्थ = सहायता के लिये । प्रस्तुत = तत्पर । अभियान = आक्रमण (attack) ।

पृष्ठ १३— परम्परागत = पीढियों से निरन्तर आने वाली । अनुरोध = हठ । गतिविधि = रङ्ग ढङ्ग । युवराज = स्कन्दगुप्त । रणदक्ष = युद्ध में कुशल । अथच = और (and in addition) स्मरणीय = याद रखने योग्य । स्वीकृत = स्वीकार । आयोजन = सजधज, तैयारी । पाकशाला = रसोई, भोजनालय । सर्वस्वतिकर डालूं = सब कुछ खाकर समाप्त कर दूँ ।

पृष्ठ १४—कल्याण, कामना = शुभेच्छा, भलाई की इच्छा । चक्रपाणि = सुदर्शन चक्र हाथ में रखने वाले अर्थात कृष्ण । नर्तकियाँ = नृत्य करने वाली (Dancing girls) अपानक = मदिरा । भेड़िये = भयानक विद्रोही इनसे··············चाहिये

भावार्थ— न जाने किस समय धोके से आक्रमण रच कर राज्य को स्वयं दबा बैठे ।

अवकाश = समय, छुट्टी । अबोध = मूर्ख अज्ञानी ।

पृष्ठ १५— कोटिल्य = चाणक्य का उपनाम ।

व्याख्या = पृथक २ रखना (analysis) । अनर्थ शास्त्र = बुराई का शास्त्र, अर्थशास्त्र के भिन्न शास्त्र में ।

अतीत = व्यतीत, भूतकाल। वीन तार = वीणा के तार।

न छेड़ना...कोकिल।

अन्वय—हे कोकिल! उस अतीत स्मृति से खिचे हुये तार न छेड़ना। करुण रागिनी तड़फ उठेगी ऐसी पुकार न सुना।

भावार्थ— उक्त गीत प्रेम-सम्बन्धी है। किसी विरही का कथन कोकिल के प्रति है— हे कोकिल प्रियतम की उस पूर्व की स्मृतिसे खिचे हुये हृदयरूपी वीणाके तार न खींच डालन अर्थात हृदय तन्त्री तेरी कूक को सुनते ही टूक टूक हो जावेगी प्रेम-गाथा की करुणा कथा तेरे गायन से अपना करुणा-राग अलापने लगेगी अर्थात प्रियतम की स्मृतिदायिनी तेरी मधुरवाणी को सुनकर वियोगावस्था में अश्रुपात होने लगेगी।

नोट— कोकिल की पुकार विरही मनुष्यों को दुख दायिनी होती है।

हृदय...कोकिल।

भावार्थ— हृदय को प्रियतम के बियोग ने धूल में मिला दिया है तथा उसे अपने पदचिह्नों सा बना दिया है अर्थात प्रियतम की स्मृतिमें उनके चरणों को हृदय तल में रखती हूँ। समस्त विकसित पुष्प गिर चुके हैं अर्थात समस्त ऐश्वर्य तथा सुख नष्ट हो चुके हैं। अब वह पूर्वसी बसन्त बहार नहीं है अर्थात वियोग में सदैव मलीन रहती हूँ।

नोट—उक्त पद 'दिया' के स्थान पर 'दिये' होना चाहिए था।

सुनी...कोकिल!

अन्वय—हे कोकिल आनन्द भैरवी बहुत सुनी निशामाधवी विगत होचुकी। अब शारदीकैबी न रही न मघाकी फुहार रही।

भावार्थ-विरहणी कहती हैकि हे कोकिल मैं आनंद की भैरवी (रागविशेष) बहुत सुनचुकी हूँ। मेरी निशारूपी माधवी लता अब मुर्झा चुकी है (सुखदायिनी निशा पति के साथ चली गई)।

अब शरद ऋतु की चन्द्रिका नष्ट हो गई है और न अब मघा नक्षत्र की फुहारें ही रह गई हैं।

नेम = शुद्ध रूप नियम क्षेम = कुशल।

न खोज .... कोकिल!।

अन्वय—पागल मधुर प्रेम को न खोज और के नेम को न तोड़ना विरह मौन के क्षेम को क्या कोकिल अपनी कुचाल को सुधार।

भावार्थ—पगली कोकिल मधुरप्रेम का न खोज, क्योंकि प्रीति कर काहूसुख न लह्यो के अनुसार मैं भी प्रेम करनेके कारण दुख का अनुभव कर चुकी हूँ। अन्य किसी के नियमको प्रेम द्वारा न तोड़ (जिससे प्रेम जोड़ कर तोड़ा जाता है) उसे भी कष्ट होता है अतएव हे कोकिल प्रेम न खोज कर विरह और मौन को कुशलता से रख (प्रेम की भाषा मौन है, उसकी मौनता एवं विरह कथा से बच) हे कोकिला व्यर्थ के दुख में पड़ने को अपनी बुरी चाल को सुधार।

नोट :— प्रसाद जी के गीत अवसर उपयुक्त नहीं हैं न वह नाटक के लिये ही लिखे गये हैं। अतएव उनका अध्ययन स्वतत्र रूप से करना चाहिये।

पृष्ठ १६— कविता .... है।

भावार्थ— मनुष्य बड़े पुन्यों के पताप से कवि बनता है।

इस .... हुई।

भावार्थ— क्यों कि कवि जीवन पुण्य द्वारा प्राप्त होता है इसी कारण अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ कवि जीवन यापन करने की इच्छा की। किन्तु अपने को उतना सौभाग्यशाली न समझने के कारण उसमें दुराशा भी अन्तर्हित थी।

अभाव = न्यूनता, कमी न होना।

सँसार ....रहा।

भावार्थ— सँसार के जिन जिन पदार्थों को मैं प्राप्त न कर सका उनको अन्त में अपना असन्तोष कहकर अपना सन्तोष किया अर्थात 'खट्टे अगूरों' वाली मेरी दशा हुई। असफलता पर असन्तोष की आड़ में मैं अपने हृदय को धोखा देता रहा।

विडम्बना=शोक की बात, अपमान, व्यर्थ, निसार। लक्ष्मी के लाल=धनवान मनुष्य। भूभङ्ग=कटाक्ष। क्षोभ=दुख।

लक्ष्मी ... ... क्या ?

भावार्थ— धनवान मनुष्यों ने मुझे कटाक्ष पूर्ण नेत्रोंसे देखा जिससे मैं तिरस्कार तथा दुख की ज्वाला मे जलता रहा अर्थात धन देने वालों ने मुझे टेढ़ी दृष्टि अथवा वँक नेत्रों से देखा जैसे किसी याचक को देखते हैं। कवि जीवन में मुझे अतिरिक्त तिरस्कार के और कुछ न प्राप्त हुआ।

काल्पनिक=कल्पना से बना हुआ जीवन।

नोट—कवि का जीवन उसकी कविता है जिसमें कल्पना का प्रचुर प्रयोग होता है। अतएव कवि ही स्वयं कल्पना का एक पुतला बन जाता है। उसकी सभी बातें काल्पनिक होती हैं। इसके साथ साथ विद्वजन कवि जीवन को प्रशँसा करते हैं।

एक ... ... है।

भावार्थ - कवि का जीवन काल्पनिक होते हुये दूसरे विद्वान मनुष्यों की प्रशँसा का पात्र होता है। किन्तु धन प्राप्त करने के लिये कवि को किसी धनवान का आश्रय खोजना पड़ता है। अतएव धन के लिये उसका जीवन दूसरों की कृपा का अभिलाषी रहता है।

सँचित=एकत्रित। हृदय-कोष=हृदयरूपी निधि। व्यङ्गात्मक =कटाक्षपूर्ण। अट्टहास=खिलखिला कर हंसना। बिषमता= प्रतिकूलता। व्यवस्था=दशा, तुलना।

संचित ... ... होगी ।

भावार्थ— एक ओर तो मेरे हृदय रूपी निधि में एकत्रित अनोखे मूल्य वाले उदार विचार रत्न अर्थात श्रेष्ठ विचार हैं। तथा दूसरी ओर आदरके स्थानपर उनका अनादर करने वाली निर्धनता का कटाक्ष पूर्ण घोर हास्य है। यह दोनों बातें एक दूसरे के प्रतिकूल हैं परस्पर दोनों की तुलना भी नहीं की जा सकती इतना बड़ा अन्तर है अर्थात उच्च उदार विचारों का कवि होते हुये भी मैं निर्धन हूं।

मनोरथ—नाम, संज्ञा प्रकाण्ड=बड़े दिग्गज। परास्त करने में=हराने में। भाजन=स्थान, पात्र। कुलपति=पुरोहित या गृह का इष्ट देवता। अध्यापन-कार्य=टीचरी, मास्टरी, अध्यापक पद।

वही ... ... है।

भावार्थ—कविता द्वारा मैं अपने को सन्तुष्ट रखता हूँ। जिसप्रकार भूखा भोजनसे सन्तुष्ट हो जाताहै इसी प्रकार मुझे कविता रचने की बुभुक्षा सताती है जो रचना पूर्ण हो जाने पर शान्त होती है। वर्णमय=शब्दयुक्त=स्वर्गीय=इंद्रयातीतजगत।

कवित्व ... ... है।

भावार्थ— कविता शब्दों द्वारा बना हुआ एक चित्र है। कविता रूपी चित्र की रेखा तथा रंग उसके वर्ण हैं कविता एक स्वर्गिक दिव्य विभूती है। भाव कविताकी अन्तरात्मा है अतएव वह भावपूर्ण संगीत की सृष्टि करती है जो पूर्ण रूप से स्वर्गीय आनन्द का प्रदायक होता है।

नोट—नृत्य, वाद्य तथा गीत तीनों को मिलाकर संगीत बनता है। आलोक=प्रकाश। असत=मिथ्या। सत=सत्य। जड़=वृक्षादि। चेतन=जीवधारी मनुष्यादि। बाह्य-जगत=संसार। अन्तर्जगत=हृदय। पृष्ठ— १६, १७

अन्धकार ... ... कविताहीन।

भावार्थ— कविता में वह अद्भुत शक्ति है जिसके द्वारा वह अन्धकार का प्रकाश से, मिथ्या का सत्य से, जड़ पदार्थों का जीवधारियों से, वाह्य विश्व का हृदय से सम्बन्ध स्थापित कराती है। कवि प्रतिमा की किरणें अन्धेरे से अन्धेरे पदार्थ को प्रकाश युक्त बना देती है। 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि'। असत्य तथा मिथ्या बातोंमें सत्यताका मन्त्र फूंक देती है। वृक्षादि प्रकृति के जड़ पदार्थों से मनुष्यों का सम्बन्ध स्थापित करती है तथा समस्त संसार से हमारे हृदय का सम्बन्ध स्थापित करती है।

नोट—कविता की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा पं० रामचन्द्रजी शुक्ल की है आधुनिक युग के प्रमुख कवि प्रसाद जी ने भी वैसी ही परिभाषा लिखी है।

"कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है" शुक्ल जी।

कृत्रिमता=बनावट। द्विपद=दो पांवों वाला।

और मनुष्य ... ... है।

भावार्थ—वास्तव में यदि भोजन और पेट की चिन्ता ही मनुष्य का भी लक्ष्य रह जाय तो पशु तथा मानव में कुछ भेद ही न रहे। मनुष्य पशु होने से इस कारण से बच जाता है कि वह भली प्रकार बातें बना सकता है। अपनी त्रुटियों को छिपा सकता है। अपने पापों को वह बुद्धिमानीसे छिपा लेता है। तथा बातों के जाल से वह दूसरों को धोखा देकर फाँस लेता है। जीवन की आवश्यकताओं को वह स्वाभाविक नहीं रहने देता

किन्तु बाहरी टीप टाप अधिक पसन्द करता है। अपनी इस सभ्यता तथा चार पैर के स्थान पर दो पैरों का होने के कारण मनुष्य पशु की कोटि से ऊंचा उठ जाता है।

तात्पर्य = अभिप्राय, स्वप्नमय = स्वप्नयुक्त।

विचार... ... ... आओ।

भावार्थ -कल्पना के लोक को त्याग, जागृत अवस्थामें आओ

वृत्ति = वेतन। राज कृपा = राजा की कृपा।

पृष्ठ १८— तुम... ... ... है।

मनुष्य कुछ काल तक राज सेवा करने के उपरान्त राजा की अनुकम्पा तथा दया का भाजन बनता है।

धारणा = विचार। दृढ़ = पक्की। टकानेदो = ठोकर खानेदो

बड़े ... ... हो।

भावार्थ— बड़े कहलाने वाले मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि वह किसी पर कृपा करने से पूर्व उसे अपना अत्यन्त आभारी तथा कृतज्ञ बनाने की सोचा करते हैं। इससे पहले वह उसे इधरउधर ठोकरें तथा धक्के खाने देते हैं। जिससे हिरफिर कर वह उन्हीं की शरण ले।

शब्दार्थ-आतन्क = भय। मलेच्छाक्राँत = मलेच्छोंसे दबाया हुआ। पथप्रदर्शक = मार्ग दिखलाने वाले। परमाणु = छोटे २ अँश अथवा भाग। संगठित = एकत्रित। पाथेय = मार्गकी सामग्री

वही ... ... रहा।

भावार्थ— काश्मीर की सुन्दर सुखद कल्पना ने कविता में सहायक होकर मेरी जीवन यात्रा को सफल बनाने में मार्ग की सामग्री का कार्य किया।

संसृति = संसार। सुन्दरतम = अत्यन्त सुन्दर, सबसे सुन्दर

नोट—तर और तम शब्द के आगे जोड़ देने से क्रमशः Comparative और Superlative अर्थात तुलनात्मक तथा सर्वोच्च विशेषण बन जाते हैं।

शब्दार्थ—योंही=सरलता से। उच्छृङ्खलता=स्वतन्त्रता। तरल=चञ्चल। निश्वासों=श्वासों। अधर=होंठ। परिरम्भ मुकुल=बाहु पाश की बन्धन रूपी कली। अली=भ्रमर। माप =नाप। सजग=जाग्रत। सुप्त=सोया हुआ। श्यामा=रात्रि।

संगृत ... ... छिलने।

भावार्थ - मातृगुप्त अपनी स्त्री अथवा पत्नी को स्मरण कर के कहता है— हे प्रिये! संसार के वह सब से सुन्दर अवसर जब हमारा तुम्हारा सम्मिलन हुआ था, योंही बड़ी सरलता से मत भुला देना। उस समय की अपनी बे रोक टोक वाली स्वतंत्रता कहकर ही अपने हृदय को आश्वासन देकर न रह जाना। मदमस्तता सी तुम्हारी चंचल हंसी के प्याले में लहरें उठती थीं। तुम मेरे छोड़े हुये निश्वासों से अर्थात काम क्रीड़ा में छोड़ गये श्वासों से आनन्द में आकर मुझ से सटकर ऊपर को उठती हुइ मेरे ओष्टों को चूमा करती थीं। मैं भी उस काम क्रीड़ा के समय तुम्हारे आलिङ्गन की बाहु पास रूपी कलिका में भौंरे की भांति बन्दी होकर काँपने लगता था (आनन्द अतिरेक के कारण) इसी बीच हम दोनों का प्रेम प्याला छलक उठता था और उसमें उठने वाली लहरें मानो मेरे सुख को नापने लगती थीं, सोया हुआ सौंदर्य जाग उठता था। हम दोनों की चञ्चल भौंहें परस्पर मिल जाती थीं, आलिङ्गन में स्त्री पुरुष के सारे अङ्ग एक दूसरे से सट जाते हैं। लहर के लीन हो जाने पर अर्थात पूर्ण आनन्द ले लेने पर मेरे ही नखों से तुम्हारी छाती छिल गई (काम क्रीड़ा में पुरुष स्त्रीका काम जाग्रत करनेके लिये छातीमें नख चुभाया करता है)।

पृष्ठ १६ शब्दार्थ— नखदान=चन्द्रमा की भाँति टेढ़ा नख चिन्ह । मुक्ता=मोती । ग्रन्थित=गुथा हुआ । निष्ठुर=कठोर विभ्रम=भ्रम । क्षितिज=पृथ्वी और आकाश के मिलने का स्थान (horizon) । जलनिधि=समुद्र । मृदु=कोमल ।

श्यामा ... ... जाना ।

भावार्थ—उस रात्रि में टेढ़ा चन्द्र सदृश नख चिन्ह छाती पर पड़ी हुई तारागणों की भाँति मोतियों की मालासे गुंथ जाता था जीवन के दूसरे तट अर्थात दुखमय जगत के दूसरे सुख तट पर खड़ा होकर मैं इस दृश्य पर चकित होकर हंसा करता था। तुम अपनी कठोर क्रीड़ा के भ्रम से तथा चातुकार बचनों के फुसलाने से सुखी हुई और आश्चर्य त्याग जाने पहचाने पथिक की भाँति मुझे देखने लगे (पूर्व के अनुभव किये हुये इस सुख का अनुभव पुनः करने के लिये भूल कर ही आ जाना । हम दोनों के पृथ्वी और आकाश की भाँति ऊपर नीचे मिलने के स्थान पर उसके तट पर आनन्दरूपी समुद्र में कोमल आनन्द की हिलोर उठा जाना ।

शब्दार्थ-भावना=विचार । तल्लीन=निमग्न, डूबा हुआ । सौरभ=सुगन्ध । पराग=पुष्प-रज । चहल पहल=धूम धाम । अतिन्द्रय=इन्द्रियों से परे, इन्द्रियातीत, अगोचर ।

अमृत ... ... टूट गया ।

भावार्थ- अमृत जल से भरे हुये एक तालाब में एक सोने का कमल खिल रहा था अर्थात मैंने सुख की कल्पना का स्वर्ण कमल विकसित किया था । अलि उसपर अपनी मधुर गुञ्जाररूपी वशी बजाता था । मेरा मनरूपी भौंरा उस सुख के विषय में नाना प्रकार की कामनाऐं किया करता था। सुगन्ध और पुष्प रज उस कमल में प्रयाप्त मात्रा में थे। आनन्द की

अधिकता थी। संध्या के समय ठण्डी चन्द्रिका अपनी श्वेत चादर उसे उढ़ा दिया करती थी। (सो जाने पर मनुष्य स्वप्न में कल्पित सुखोंकी ओर भी बढ़ाचढ़ा तथा सत्य सा समझता है)। मैंने उस मधुर सुन्दरता, उस अगोचर जगत की जीती जागती कल्पना की ओर हाथ बढ़ाया था। किन्तु निद्रा भङ्ग होते ही सब नष्ट हो गया।

नोट— उक्त भाव मातृगुप्त के कवित्वमय विचार हैं। सुख प्रसाद नष्ट हो जाने पर वह भावना में मग्न होकर कह रहा है।

शब्दार्थ— ज्वाला=अग्नि। बड़वानल=समुद्र में रहने वाली अग्नि है।

नोट— अग्नियाँ तीन प्रकार की होती हैं। जठराग्नि, बड़वाग्नि तथा दावाग्नि। अनन्त=अन्त रहित।

नोट—'अ' शब्दके पूर्व जोड़ देनेसे अभाव प्रकट करता है।

जलराशि=जल समूह। रत्नाकर=रत्नों का गृह अर्थात समुद्र। रत्न समुद्र से निकलते हैं।

पृष्ठ २०— प्रभातसूर्य=प्रातःकालका अरुणोदय। प्रभा=कान्ति। अलोकित=दीप्यमान। पोखराज=पुख्यराज एक अमूल्य पत्थर। नवनीत=मक्खन। नवनीत की पुतली=मातृगुप्त की स्त्री। वह लाक्षणिक शब्द है। नवनीत कोमल स्निग्ध तथा शीतल होता है। जाड़ों में सिकुड़ जाता है तथा गर्मियों में पिघल जाता है। श्वेत होता है। यही सब गुण नवनीत की पुतली सदृश एक रमणी में होते हैं। यहां मातृगुप्त अपनी प्रेयसी की कल्पना कर रहा है।

उस ... ...भिन्न।

भावार्थ-हिमालय पर्वतके ऊपर पुख्यराज पर्वतका सा सुंदर महल था जिस पर हिम के होने के कारण अरुणोदय की स्वर्ण रश्मिया बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थीं उस महल में से नवनीत

अर्थात मक्खनकी पुतली सदृश युवती झाँककर वहाँ की ऊंचाई से संसार की सुन्दरता को निहारती थी। शीत के कारण यह मक्खन की पुतली सिकुड़ जाती थी। स्वर्ण रश्मियों को यह देखकर ईर्ष्या हुई और अत्यन्त तीव्र ताप से महल को पिघला दिया। उस पुतली सुन्दरी पर क्या बीती? ईश्वर इसकी रक्षा करे। हमारे ठण्डे अश्रु प्रवाहकी शीतलता उसे न पिघलने दे नष्ट होने से बचा दे। कल्पना के पङ्ख गिर जाते हैं अर्थात् निस्सहाय हो जाती है या कल्पना शक्ति भी कार्य नहीं करती, उसके संबंध में कुछ भी नहीं सोचा जा सकता। मित्र अब उस वार्ता को छेड़ना दुखद है। अतएव रहने दो महल गिर जाने पर उस पुतली को अब मूकता के घोंसले में विश्राम करने दो।

नोटः—नवनीत की पुतली—देखो उपरोक्त नोट+मातृगुप्त काशमीर के रहने वाला है जो हिमालय प्रदेश कहलाता है। अपने देश और स्त्री की जो उसे त्याग कर वार्विचासिनी हो गई स्मृति पर उसकी कल्पनामय उक्ति है। मातृगुप्त के सारे भाषण कवियों जैसे हैं।

शब्दार्थ— विश्व=संसार। इन्द्रजाल=माया जाल। इन्द्र जाली=मायावी ईश्वर।

यदि ... ... मिले।

भावार्थ— यदि यह समस्त संसार केवल माया का जाल है। तो माया के प्रचारक उस ईश्वर की अनन्त इच्छा की पूर्ति करने वाला मधुर मोह भी दीर्घायु हो क्यों कि बिना मोह माया नहीं होती। तुलसीदास ने कहा है :—

मैं अरु मोर तोर तें माया,
जेहि वश कीन्हें जीव निकाया।

और सदैव इच्छाओं के भण्डार वाले इस हृदय को संतुष्ट

होने दो। हृदय की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं, माया में पड़ कर ही वह कर्त्ताहमिति मन्यते' अर्थात अपने को कर्त्ता समझ बैठता है। इसी का नाम ईश्वर से पृथक जीव है जो संसार में माया से लिप्त हो भ्रमण करता फिरता हो।

कोमल पल्पना=tender imagination। वाणी=सरस्वती। सचेष्ट=कार्यशील। प्रतिभाशील=कान्तियुक्त।

तुम्हारी ... ... है।

भावार्थ—मातृगुप्त तुम अपनी कोमल विचार शक्ति द्वारा सरस्वती की वीणा में झनकार उत्पन्न कर दोगे अर्थात स्वयं विद्या की रानी सरस्वती अपनी वीणा पर तुम्हारी कल्पना की प्रशँसाका राग अलापेगी। तुम कार्यशील बनो, तेजशाली बनो। तुम्हारा भावी जीवन अत्यन्त उन्नतिशील प्रतीव होगा है।

शब्दार्थ-दैन्य=दीनता। प्रचंड=भयंकर। आतप=उष्णता

दैन्य ... ... जायगा।

भावार्थ—निर्धनता के इस जीवन में धनहीन होने की प्रदीप्त ज्वाला में कोमल प्रेम प्रवृति मुझे छाया तथा शीतलता प्रदान करें जिससे धन राहित्यसे झुलसा हुआ मेरा जीवन कृतकृत्य हो जायगा। स्नेह संसार के समस्त दुखों से पीड़ितों को आश्वासन प्रदान करता है।

नोट— दीनता का दुख सँसार में सब से बड़ा दुख है क्योंकि निर्धन मनुष्य का सब स्थानों पर निरादर होता है। लोकोक्ति भी है "माया तेरे तीन नाम परसा परसी परसराम"। संस्कृतमें कहा है 'यस्यास्ति वित्तं सनरःकुलीनः सएवंः विद्यावान सगुणज्ञः अर्थात समस्त गुण धनवान में हो जाते हैं तथा उसके दोष भी छिप जाते हैं। अन्य भी।

वरं वनं व्याघ्र गजेन्द्र सेवितं द्रुमालय पक्वफलाम्बु भोजनं।
तृणानि शैय्या वल्काल वस्त्राणां न बन्धु मध्यये धनहीन जीवनं॥

अर्थात व्याघ्र तथा गजेन्द्रों से युक्त बन का सेवन तथा वृक्षों पर मकान बनाकर रहना अच्छा है, पक्के फलों का खाना अच्छा है, तिनकों की शैय्या अच्छी है; वल्कल पहनना अच्छा है परन्तु बन्धुओं में निर्धन रहना अच्छा नहीं है।

शब्दार्थ- आजीवन=जन्म भर।

पृष्ठ २१—भव्य=सुन्दर। स्वप्नों का देश = स्वर्ण की चिड़िया भारत शस्यश्यामला उर्वरा भूमि के उजड़ जानेके कारण अब केवल स्वप्नों का देश ही रह गया है। पूर्व का वैभव अब स्वप्न मात्र रह गया है।

शब्दार्थ—क्षीण-परिचय=न्यून परिचय वाला। सहचर= साथ रहने वाला अर्थात मित्र। महाबोधि-विहार=बौद्धाश्रम। श्रमण=भिक्षुक, उपदेशक, सन्यासी। वैभव=धन, ऐश्वर्य। पर्य्यटक=भ्रमण करने वाला, यात्री। गौतम=एक ऋषि। पदरज=चरण रज Reference:— महाराज शुद्धोधन के पुत्र संसार से विराग लेकर अहिंसा का प्रचार करने पर गौतम नाम से प्रख्यात हुये तथा बौद्धमत प्रचलित किया।

शब्दाथ-दर्प=अभिमान। उद्धत=उन्नत, प्रचण्ड, पतिज्ञा। तीसरे पहर का सूर्य=उन्नतिशील राज्य प्रभा। अभ्युत्थान= उन्नति। स्मरणीय=स्मरण रखने योग्य।

आर्य ... ... है।

भावार्थ—गुप्तकाल भारत के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से विख्यात है। अङ्गरेजी इतिहास में भी लिखा है।

"Gupta period was the golden age of India"

परिवर्तन उपस्थितहै-गुप्त साम्राज्य का अवनति युग समीप ही दीख पड़ता है।

शब्दार्थ —गतिशील = परिवर्तनशील ([change] is the law of nature) निश्चित शान्ति = नितान्त चुपचाप रहना। क्रियाशील = कार्य सलग्नता। समष्टि = समूह। अभिव्यक्ति = सृष्टि, संसार। कुञ्जा = ताली। [स्पन्दन] = गति, फड़कना। चेतन = जीता जागता। रहस्य = गुप्त बात, भेद।

इस गतिशील ... ... रहस्य है।

भावर्थ— संसार परिवर्त्तनशील है। जो आज है वह कल नहीं अतएव 'परिवर्त्तन' शब्द मुखसे निकलतेही उसपर आश्चर्य से नहीं चौंकना चाहिये। यदि संसार में परिवर्तन रुक जाय तो प्रलय रूपी महापरिवर्त्तन हो जाता है। आवागमन के कारण ही सृष्टि के मृत्यु तथा उत्पत्ति रूपी दोनों पहिये चलते हैं यही बदलना संसार का जीवन प्रकट करता है। स्थिरता मानो दूसरी मृत्यु है। सब कार्य छोड़ बैठना मृत्यु की ओर बढ़ना है। प्रकृति सदैव बदलती रहती है। वह कभी एक रूप में अथवा स्थिर नहीं रहती। समय एक चतुर खिलाड़ी है। वह दोनों हाथोंमें स्त्री पुरुष रूपी दो गेंद लेकर खेला करता है यही स्त्री तथा पुरुषका संयोग संसार की ताली है। इसी से सृष्टि चलती है। पुरुष को उछाला जाता है अर्थात पुरुष रूपी गेंद को अधिक विपत्तियाँ रूपी गद्दे सहने पड़ते हैं। इस प्रकार स्पन्दन चलता है। स्त्री सुन्दरी होने के कारण पुरुष को अपनी ओर खींच लेती है। इस जड़ प्रकृति का निस्तब्ध होते हुयेभी यह जीता जागता गुप्त रहस्य है। जिस सृष्टि का संचालन होता है।

पृष्ठ २२ शब्दार्थ— कुतूहल = जानने की इच्छा। विश्लेषण = व्याख्या वा उत्तर। समाधान = संशय निवारण। उष्ण = तप्त उपचार = क्रिया। विह्वल = दुखी। आकाँक्षाओं = इच्छाओं, अभिलाषाओं, कामनाओं, ध्रुवतारा = सदैव अचल रहने वाला

Pole Star। निर्भय==शान्त निष्प्रयोजन । अभिनय = नाटक प्रदर्शन। अभिनेता=अभिनय करने वाला actor।

पुरुष ... ... लगा।

भावार्थ— पुरुष संसार में एक प्रश्न अथवा ऐसी समस्या है किसके विषय में कुछ न कुछ जानने की इच्छा सदैव रहती है। परन्तु स्त्री उसका उत्तर, व्याख्या तथा सँशय निवारण करने वाली है। स्त्री में पुरुषों के सँबध में होने वाली सारी समस्याओं का हल है। पुरुष की प्रत्येक जानने योग्य बात का वह उत्तर है उसकी जीवन सम्बन्धी समस्त इच्छाओं की पूर्ति का वह सर्वोच्च साधन है और शँसप्त पुरुषके लिये चन्द्रिका सदृश ठण्डी औषध है। दुर्भाग्य वश मनुष्य प्रत्येक अवस्था में सन्तुष्ट है। वह स्त्री के संकेत पर उसके हाथों की कठपुतली बनकर चलता है। कौवे की भाँति काँय काँय रटने लगता है। उसका पढ़ाया हुआ पाठ शीघ्र रट लेता है।

विषय ... ... रहे हैं।

भावार्थ— कुमारगुप्त विषय लोलुप होने के कारण तरुणी की कामेच्छा आदि को पूर्ण करने के प्रयत्न में लगे हुये हैं।

काले ... ... होजा।

भावार्थ— विपत्ति की कृष्ण घटा छाई हुई है। शीघ्र ही कोई दुर्घना रूपी अन्धकार घटने वाला है।

परन्तु ... ... है।

भावार्थ— गुप्त साम्राज्य की भावी आशा स्कन्दगुप्त है उसी पर राज्य का उज्ज्वल भविष्य निर्भर है।

अनेक ... ... भरेंगे।

भावार्थ— मगध पर नाना प्रकार की विपत्तियों के पर्वत टूटेंगे।

एक ... ... होंगे ।

भावार्थ-एक विपद लाने वाला सम्पूर्ण नाटक होगा जिसका रङ्गमञ्च मगध है । नाटक के पात्रों में से मातृगुप्त भी एक होगा ।

नोट:—यहां भावी पुरगुप्त के विद्रोह की पूर्व सूचना है ।

शब्दार्थ— विलक्षण=चतुर उदार=विशाल हृदय । कंट-कित=कांटों से पूर्ण ।

क्षुद्र ... ... है ।

भावार्थ— चूहे अथवा मूसक के शब्द से भयातुर होने वाले मनुष्य कदापि कठिन उन्नति मार्ग की विघ्न बाधाओं को परास्त कर उन्नत नहीं बन सकते ।

महत्वाकांक्षा=बड़े होने की इच्छा । दुर्गम=कठिनता से गम्य ।

महत्वाकांक्षा ... ... है ।

भावार्थ—उन्नतशील विचारों का दुस्साध्य स्वर्गिक आनन्द प्राप्त होना उनके लिये असम्भव है ।

शब्दार्थ— अन्तःपुर=रनवास । नियति=भाग्य ।

अपनी ... ... चलूंगी ।

भावार्थ— अपने भाग्य की निर्माता मैं स्वयँ बनूंगी ।

"A man is the builder of his own fortune"

परिहास=हंसी । समक्ष=सम्मुख । विद्रूप=जली भुनी बातें । व्यङ्गवाण=कटाक्ष । अन्तस्तल=हृदय । विप्लव=विद्रोह (rsepectable) । सचेत करेंगे=जगावेंगे ।

पृष्ठ २४ शब्दार्थ —पद प्रदर्शक=मार्ग दिखाने वाले । अनु-सरण=पीछा । प्रचँड पराक्रम=प्रबल बल । माननीय=आदर-णीय, (respectable) सम्मान आदर । मार्मिक=गुप्त, मर्म में रहने वाला । उद्घाटन=प्रकट । शूलों=काँटों । लौहफलक=

लोहे के फलके वाला। क्षुद्र = तुच्छ। विष-वाक्य-वाण = विष के बुझे हुये वाक्य रूपी वाण। उपयुक्त = योग्य। उग्रता = प्रबलता। महाबलाधिकृत = (Commader in chief) प्रमुख सेनापति। चिन्तित = व्यग्र। विकल = दुखी। अव्यवास्थित = अस्थिर। जटिल = क्लिष्ट, गुथे हुये, उलझे हुये। व्यस्थ = सलग्न लगेहुये। कृतघ्न = कियेहुये को मिटाने वाला। निश्चिन्त = चिन्ता रहित। उद्योग = यात्रा। क्रान्ति = परिवर्तन (revolution) उपस्थित = प्रस्तुत।

पृष्ठ २५—पारसीक = एक प्रकार की द्राक्षाओं की मदिरा कालागुरू = काल + अगरू = काला सुगन्धित चन्दन। गन्ध-धूम सुगन्ध का धुआं। सौध-मन्दिरों में = महल के मन्दिरों में। विप्लव ज्वाला = विद्रोह की आग्नि। उत्कट = तीव्र। असहाय = असहनीय। आगामी = भावी। खण्ड-प्रलय = अंश वा भाग रूप से होने वाली प्रलय, पूर्ण प्रलय का एक भाग। मिथ्या = अलकि सूची। मेघ = घनिष्ट अँधकार, सुई की नोक से न बिंध सकने वाला अर्थात जिसमें सुई की नोक की बराबर भी अन्धकार से रिक्त स्थान न हो (Pitch dark)। रहस्यमयी = रहस्यवाली, भेदयुक्त। नियति = भाग्य। नील-आवरण = नीला पर्दा अर्थात आकाश। प्रज्वलित = जलती हुई। नियति = भाग्य। अभिचार = प्रलय। सूचना = लक्षण, चिह्न।

सूची मेघ... ... ...करता है।

भावार्थ— प्रपञ्च बुद्धि घनिष्ट अन्धकार में तिरोहित भेद युक्त भाग्य का तत्व भावी का, नीलाकाश रूपी पर्दा उठा कर देखने वाला है अर्थात वह इतना भयङ्कर हैकि कठोर छिपे भाग्य को भी पढ़सकता है। नीलाकाश के समस्त रहस्योंको वह जानता है उसके उबलते हुये रक्त नेत्र प्रलय की सूचना देने वाले हैं।

उसका हास्य भी इतना भयङ्कर होता है कि मानों नाश करने वाला अट्टास हो। उसका विनोद तथा क्रीड़ा भी प्रचण्ड वायु सम होती है। उसका वार्तालाप का ढङ्ग ऐसा है मानों अभी उछल कर बिजली से आलिंगन करेगा।

नोट— रहस्यमयी नियति के ज्ञाता भयङ्कर रूप वाले प्रपञ्च बुद्धि का चित्रण भी प्रसाद जी ने कुछ रहस्यमयी भाषा में ही किया है।

शब्दार्थ— सहसा = अचानक (all of a sudden)। भाद्र = भाद्रपद, भादों का महीना, इस मास में वर्षा हुआ करती है। अमावस्या = तिथि, कृष्णपक्षकी अँतिम तिथि, इसमें घोर अन्धकार रहता है। शुक्लपक्ष में जिस दिन पूर्णिमा होती है कृष्ण पक्ष में उसी दिन अमावस्या होती है।

सहमकर = भयातुर होकर। सद्धर्म = बौद्धधर्म। अभिशाप = क्रोध।

तुम ... ... बल।

भावार्थ— मुझ बौद्ध के क्रोधातुर हो जाने पर तुम इतने साहसशील नहीं हो जो मेरे क्रोध का प्रचण्ड रूप देख सको। तुम्हारे नेत्रों में इतना बल नहीं है।

पृष्ठ २६ शब्दार्थ— मुण्डित मस्तक = मुंडे हुये सिर वाले। जीर्ण कलेवर = वृद्ध-हृदय, पुराने कलेजे वाले।

कङ्काल = सूखे शरीर वाले, ढाँचा मात्र। क्या धरा है = कुछ भी नहीं है, अत्यन्त तुच्छ है। हमारा यह कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

शव = मृतक। तारा = श्मशान की देवी। तांडव नृत्य = वह नृत्य जो शिव प्रलय के समय करते हैं। भयङ्कर नृत्य। शून्य = रिक्त। सर्वनाशकारिणी = सब कुछ नष्ट करने वाली। मुण्ड =

कटे हुये सिर। कन्दुक क्रीड़ा=गेंद का खेल (football play) फलस्वरूप=परिणाम स्वरूप (as a result of them)। महा-नरमेघ=बड़ा भारी मनुष्यों की आहुति वाला यज्ञ।

उपसंहार=अन्त। प्रहर=भाग (Part)। गगन=आकाश। उल्कापात=ओलों की वर्षा। महाशून्य=आकाश।

देखो ... ... सावधान।

भावार्थ—देख लेना श्मशान की अधिस्ठात्री देवी तारा मृतकों की चिताओं पर प्रलय का ताण्डव नृत्य करेगी अर्थात मगध का विनाश समीप है। मृत शरीरों पर तारा का नृत्य तभी होगा। प्रकृति सर्वनाश कर देने के उपरान्त कटे हुये शीशों से गेंद की भांति क्रीड़ा करेगी। अब अश्वमेध यज्ञ मगध में बहुत हो चुके अब उनके विरुद्ध परिणाम स्वरूप (as reaction) नरमेध यज्ञ होंगे जिनमें मनुष्यों की आहुतियां डाली जायँगी। उस समय किसी का कुछ करनेका वश न चलेगा। मेरी शक्ति से अमावस्या को प्रथम प्रहर में श्वेत ओलों की वर्षा होगी। अनन्त देवी! उसी समय आकाश की ओर देख मगध में होने वाले विप्लव का श्री गणेश समझ लेना। मैं पहले ही से सब को सावधान किये जाता हूँ।

शब्दार्थ–प्रस्थान=जाना, गमन, विदाई। भूकंप=भूचाल। नर-पिशाच=मनुष्य के रूप वाला पिशाच, वास्तव में यह पिशाच है मनुष्य नहीं। प्रतिश्रुत होना=वचन देना प्रतिज्ञा करना। सदैव=सर्वदा, सदा। अनुचर=सेवक। कादम्ब=मदिरा वारुणी। मोह-निद्रा=मोह रूपी नींद।

पृष्ठ २७—असहाय=निस्सहाय। अबला=स्त्री। दुर्भेद्य अज्ञात, जो भेदा न जा सके, जिस तक पहुँच न हो। विश्व प्रहेलिका=संसार की पहेली (जिसका उत्तर उसी में मिले) उसे

पहेली कहते हैं, प्रहेलिका एक अलङ्कार होता है जैसे—
"बाले से वह सब को भावे, बढ़ा हुआ कुछ काम न आवे।
मैं कह दिया उसका नाम, अर्थ करो के छोड़ो ग्राम॥"
उपरोक्त पहेली 'दिये' पर घटती है जो उसी मेंसे निकलता है इसी प्रकार अनन्त देवी का रहस्य उसी में छिपा हुआ है। रहस्य=गुप्त भेद। साहसशीला=वीरा। काम-पिपासा=काम की प्यास काम तृष्णा। सङ्केत=चिन्ह। अतृप्ति=असन्तुष्टता। प्रवञ्चना=छलना, ठगनेकी प्रवृति। रक्त=लाल। विलास=काम-क्रीडा। वहन=धारण। स्थान=अवसर (occasion)।

एक ... ... नहीं है।

भावार्थ— मगध में होने वाली भावी गुप्त-घटनाओं का बीज अनन्त देवी के अमेघ रमणी-हृदयमें अन्तर्हित है। अतएव समस्त मगध साम्राज्य के लिये अज्ञात पहेली का अंकुर अनन्त देवी के हृदय में छिपा हुआ है। आश्चर्य होता है इस वीरांगना रमणी को देखकर। अब मुझे यह देखना है कि गुप्त साम्राज्य के झूले को किस ओर झुकाती है। क्योंकि चाबी इसके हाथ में है जो चाहे सो इच्छित बातकर सकती है। किन्तु अभी तक उस के नेत्रों से काम तृष्णा के चिन्ह प्रकट हो रहे हैं उसकी कामाग्नि अभी शांत नहीं हुई है। कामातुर छली व्यक्ति जैसी लाली उसके कपोलों पर रक्तिमा बनकर छाई हुई है जो उष्ण निश्वास वह छोड़ती है। उनसे भी यह प्रकट होता है कि वह और विहार करना चाहती है। परन्तु अब अधिक विचारने का अवसर नहीं नहीं है। मुझे चलकर इसका साहस देखना चाहिये।

नोट— जिस समय तक स्त्री कामातुर रहती है तब तक वह पूर्ण वीरता से पति के विरुद्ध षड़यन्त्र नहीं रच सकती इसी कारण भटार्क को सन्देह है।

अनन्त देवी ने भटार्क और पुरगुप्त सहित राज्य के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा इसीकारण उसके प्रति 'दुर्भेद' नारी-हृदयमें विरुद्ध प्रहेलिका का रहस्य बीज कहा गया है।

पृष्ठ २८— अन्तपुर=रनवास, रानियों का महल। खड्ग-लता=असि अथवा तलवार रूपी लता। अभाव=न्यूनता, इच्छा। कोष=भण्डार। भर्त्सना=इच्छा। अक्षय=कभी रिक्त न होने वाला। अन्तरात्मा=हृदय। अत्यन्त शोचनीय=मरणोन्मुख (critical)।

कौन ... ... उठती है।

भावार्थ–मैंने संसार में एक ही वस्तु को चुना उसी के सौंदर्य पर मैं मोहित हुआ वह है मेरी असि रूपी लता। जिस प्रकार कोई सुन्दरी रमणी पर मोहित रहता है उसी प्रकार मैं इस तलवार पर मुग्ध रहा। इसके अतिरिक्त मुझे संसार के अन्य पदार्थ सुन्दरही प्रतीत नहीं होते। क्योंकि प्रेम करने योग्य यहि ही हो सकती थी किन्तु उससे मैं इस कारण घबराता हूँ कि उस की इच्छाओं का भण्डार कभी पूर्ण नहीं होता किसी न किसी वस्तु की याचना मुझसे करती ही रहती है। उसकी आवश्यक-ताओं को पूरा करते करते मैं थक चुका हूं किंतु उसकी कामा-नाओं का निधि फिर भी रिक्त नहीं होता। अतएव मेरा हृदय अब उससे कांपने लगा है।

पृष्ठ २९ शब्दार्थ— नियन्त्रण रखना=बंदी बनाना, पहरा लगाना, कोलाहल=हल्ला। भीषण=भयङ्कर। उल्कापात=ओलों की वर्षा। बाधा=रोक, प्रतिबन्ध। गोबर गणेश=दुर्बल लाक्षणिक शब्द, निर्जीव पतला जो कुछ भी न कर सके, असहाय बुद्धू, निरर्थक। सिंहवाहिनी=सिंह पर आरूढ़ रहने वाली अर्थात देवी। अपदार्थ=तुच्छ, लघु, छोटे।

पृष्ठ ३० -प्राणी=व्यक्ति, मनुष्य, जीवधारी। डाढ़संवर रहे

हैं=भक्षण करने को तत्पर हैं। कुमन्त्रणा=बुरी सलाह। क्षीण =हल्के, छोटे २। दहल उठा=काँप उठा। खिसकती जा रही है व्यतीत हो रही है।

पवन ... ... नहीं।

भावार्थ- वायु चलती तो है किन्तु निःशब्द रीतिसे। भय के कारण वायु की गतिमें भी आज मूकता, मौनता एवं निस्तब्ध है।

शब्दार्थ— सचेत=सजग, चैतन्य।

पृष्ठ ३१—शिष्टता=सभ्यता। विश्वस्त=विश्वास के पात्र, विश्वासनीय। परिक्रमण=फेरी, चारों ओर घूमना। निधन= मृत्यु, हत्या (murder)। कुमारामात्य=मन्त्री।

पृष्ठ ३२— अबोध=मूख। महाप्रतिहार=मुख्य द्वार का ड्योढ़ीवान।

सम्राट ... ... का।

भावार्थ— मुख्य ड्योढ़ीवान अत्यन्त वृद्ध तथा अनुभवी विश्वासपात्र होता है। उसकी आज्ञा के बिना कोई भी अन्तःपुर में प्रवेश नहीं कर सकता। राजा द्वारा भेजे हुये व्यक्ति को भी वह अन्तःपुर में जाने से रोक सकता है।

शब्दार्थ— उन्मुक्त=खोलना। विलम्ब=देर। असह्य=न सहने योग्य (unbearable) पदच्युत=पद से गिराना। (to degrade from rank) अधीनस्थ=आधीनता में रहने वाला। अन्तिम शैय्या=मृत्यु शैय्या।

पृष्ठ ३३-क्षीण क्रन्दन=मन्द रुदन। शेष हो गया=समाप्त हो गया। नियमानुसार=नियमानुकूल। शस्त्र अर्पण करना= आधीनता स्वीकार करना। अभिवादन=प्रणाम। व्यवस्था= सम्मति। निर्णय=निश्चय। स्वर्गीय सम्राट=कुमारगुप्त।

पृष्ठ ३४— टिकेगा नहीं=स्थिर न रहेगा। आवाहन=

निमन्त्रित करना, बुलाना (to invite) विरत=पृथक। विलम्ब =देरी। आततायी=अत्याचारी। खड्ग=तलवार। अंतरविद्रोह =पारस्परिक शत्रुता। काली घटा उमड़ रही है=युद्ध रूपी विपत्ति आ रही है। विधान=नियम। चरम=सर्वोच्च। प्रतिकार=इलाज, औषध क्रिया। काल भुजङ्गी=काल रूपी सर्पिणी। साँप भुजा से चलता है अतएव उसे भुजङ्ग कहते हैं। राष्ट्रनीति=राज्यनीति। पाखण्डी=दम्भी। स्वामी भक्त= स्वामी के हित प्राण न्यौछावर करने वाले।

पृष्ठ ३५— जांय=नष्ठ हो जाय, बलिदान हो जाय।
तो ... ... हों।

भावार्थ— बलिदान होने दो। गुप्त साम्राज्य के हीरों के सदृश श्वेत-वस्त्र वीरों का पवित्र लोहू मेरी प्रतिशोध की इच्छा रूपी राक्षसी के लिये बलिदान हो जाय अर्थात अपने बदला लेने की वृत्ति की पूर्ति के लिये मैं असंख्य वीरों के बलिदान की भी चिन्ता नहीं करता।

पृष्ठ ३६— सम्मान सहित=आदर पूर्वक। पूजा कराते हुये=चोट खाते हुये। अवन्ती=नगरी। मूल स्थान=मुख्य स्थान। परिस्थिति=दशा। मनोविनोद=मन बहलाव।

पृष्ठ ३७— अपशकुन=कुशकुन, बुरा शकुन। शास्त्रार्थ= बहस (discussion) आप्तवाक्य=वेद, जो वाक्य सदैव सत्य हो। तर्कशास्त्र=बहस करने वाला शास्त्र (Logic)।

नन्वेवाहं ... ... लेये"।

भावार्थ— कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है न तुम हुये न मैं "न तुम्हारा है न उसका न मेरा"।

लघु संस्करण=छोटा छापा (Short edition)।

सूच्यग्र भाग=सुई की नोक की बराबर स्थान।

सूच्यग्र ... ... गिराऊं।

सन्दर्भ Reference:— यहां दुर्योधन के उन शब्दों की ओर संकेत है जहाँ उसने पाण्डवों के प्रति कहा था कि सूच्यग्र मेव न दास्यामि युद्ध विना। अर्थात युद्ध के बिना सुई की नोक के बराबर भी भूमि न दूगा। मातृगुप्त कहता है कि मै ऐसी मूर्खता न करूंगा कि तुच्छ पदार्थ गठरी के लिये लड़कर अपने अमूल्य रक्त को व्यर्थ बहा दूं।

पृष्ठ ३८— नैपथ्य = नाटक-स्टेज के पीछे का स्थान। सम्मिलित = मिलीहुई, मिश्रित। विप्लव = विद्रोह (revolution) निरीह = भोले, निरपराध। दुर्दशा = बुरी गति। बलाधिकृत = सेनापति।

क्या ... ... था।

भावार्थ— क्या मनुष्य इसी प्रकार निरपराध नष्ट होने के लिये उत्पन्न हुये हैं।

प्रतिहिंसा = प्रतिशोध, बदले में मारना। नृशंसता = कठोरता, अत्याचार। अतिरिक्त = बिना (except)।

पृष्ठ ३६ शब्दार्थ— भूतल = पृथ्वी। पारावार = समुद्र। बाड़व लेलिहान = समुद्र में रहने वाली अग्नि, बाड़वाग्नि। जिह्वा = लपट। विस्तार = फैलाव। प्रलय पयोधर = प्रलय के बादल पयो + धर = जल धारण करने वाला। रक्त-युक्त = रक्त के आँसू मानवता = मनुष्यता।

उतारोगे ... ... पुकार।

अन्वय— अब भूभार कब उतारोगे, वार २ क्यों कह रखा था मैं अवतार लूंगा, इस भूतलपर दुख का पारावार उमड़ रहा है वाड़व लेलिहान जि ा का विस्तार करता है। प्रलय पयोधि रक्तअश्रु की धार बरसा रहे है, मानवता में अब राक्षसत्व का

पूर्ण प्रचार है, क्या अब तक कानों में यह हा हाकार नहीं पड़ा सावधान हो अब तुम जानों मै तो पुकार चुका।

भावार्थ— हे भगवान अब पृथ्वी का भार कब उतारोगे, आपने (गीता में) बार २ इस बात का प्रण किया है कि (पाप बढ़ जानेपर) मैं अवतार लूँगा। बाड़वाग्नि अपनी लपटोंका विस्तार कर रही है अर्थात कष्टों का समुद्र हमें ताप दे रहा है) प्रलय काल के मेघ रक्तके आँसुओं की धारा प्रवाहित कर रहे हैं। अब मनुष्य मनुष्यता को त्यागकर राक्षसों जैसा आचरण करने लगे हैं। क्या इस समय तक आपके कर्णों में हमारा यह आर्तनाद नहीं पड़ा ? मैं तो अपनी पुकार से आपको सावधान कर चुका। आगे आप जाने मैं तो अपना कर्तव्य पालन कर चुका। अब अवतार लेकर भक्तों को बचाना अथवा नष्ट होने देना आपके हाथ में है।

नोट Reference:— उपरोक्त पद्यमें गीता के निम्न श्लोक की ओर सँकेत है।

> 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"

अर्थात हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि होती है तथा पाप अधिक बढ़ जाता है तब मैं अवतार धारण करता हूं।

> दण्डनाय चदुस्तनां विनाशाय चदुस्कृताम्।
> धर्म सँस्थायनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात दुष्टों को दण्ड देने के लिये तथा पापियों का संहार करने के लिये और फिर से धर्म की स्थापना करने के लिये मैं प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ।

अलङ्कार— बाड़व, लेलिहान तथा प्रलय-पयोधर में रूपक अलङ्कार है।

पृष्ठ ४० — निर्दय = दया रहित, कठोर, पाषाण-हृदय। हत्यारा = मारने वाला। दागो = गर्म लोहे से जलाना जिससे चिन्ह बन जाता है। सम्बल = यात्रा के मार्ग की खाने पीने की सामग्री, संसार यात्रा से पार होने के साधन (भगवान)।

नहीं ... ... वहाँ हो।

भावार्थ— भगवान ! क्या यह केवल कथन मात्र ही की बात है क्यों कि भगवान ही कर्त्ता भर्त्ता है, क्या वास्तव में तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है। क्या आप सर्वव्यापक नहीं हैं ?

शब्दार्थ— स्वच्छन्द = स्वतन्त्र। चाहे जहाँ हो = मनुष्य प्रत्येक अवस्था में अपने जन्म सिद्ध अधिकार स्वतन्त्रता को खोजता है। उत्सर्ग = त्याग। निरीह = भोली, निरपराध।

पृष्ठ ४१— अनुचर = सेवक। वीर-पुङ्गव = वीर-श्रेष्ठ, वीरों में शिरोमणि अथवा महाबली। सुरक्षित = निर्भय। आतङ्क = आक्रमण, भय के अर्थ में भी प्रयोग होता है।

पृष्ठ ४२ — भरोसा शब्द के स्थान पर व्याकरण की दृष्टि से भरोसे होना चाहिये था।

धावा = आक्रमण।

पृष्ठ ४३— प्रतिष्ठा = आदर, सत्कार। अभिप्राय = तात्पर्य। अपार = असंख्य, अतुलित। धनराशि = धन समूह। क्षुद्र अँश = थोड़ा भाग। धन लोलुप = धन के लोभी, कृपण। शृगाल = गिदड़े।

अर्थ... ... ...है।

भावार्थ— बाहुबल तथा पराक्रम से विजय प्राप्त करनी चाहिये। धन देकर विजय का बदला करना शूरवीरों का कर्त्तव्य नहीं।

सन्देश = आदेश। सम्भत = स्यात। वाहिनी = सेना। दुर्ग = किला।

पृष्ठ ४४— तब ... ... होगा।

भावार्थ— क्या मुझको स्कन्दगुप्त के स्थान पर वैसी ही वीरता से शत्रुओं का दमन करना होगा?

नोट— 'अभिनय' जिस प्रकार नाटक में एक पात्र कपी, हरिश्चन्द्र, अभिमन्यु आदि बनता है तथाठीक वैसाही अनुकरण करता है जिसे अभिनय कहते हैं उसी प्रकार आज जयमाला स्कन्दगुप्त जैसा आचरण करने को प्रस्तुत है इसी का अभिनय है।

शब्दार्थ— वाचालता = अधिक बोलना। श्रेष्ठिकन्ये = ब्राह्मण सद्वंश की पुत्री।

स्वर्ण रत्न ... ... हैं।

भावार्थ— स्त्रियाँ तो रत्न जटित गहनों की आभा देखा करती है। उनके नेत्र उसी स्वर्ण एवं रत्नों की ज्योति को सहने के आदि हैं वह तड़ित की भाँति चमकने वाली असि की दीप्ति को नहीं देख सकतीं। वहां उनके नेत्र भय से मुंद जावेंगे। हे ब्रह्म कुल में उत्पन्न होने वाली विजया! क्षत्री कुल में उत्पन्न होने के कारण सदैव साथ रहने वाली तलवार से हमें अपार प्रेम हो जाता है।

शब्दार्थ— शरणागत = शरण + आगत = शरण में आया हुआ। विपन्न = दुखी। मर्य्यादा = अवधि, सीमा। निरीक्षण = देख भाल।

पृष्ठ ४५— रुद्र = शिव। शृंगीनाद = तुरही का शब्द एक प्रकार की तूती जा प्रलयके समय शिवके गण बजाते हैं। भैरवी = भैरों देवी। वाद्य = बाजा। भैरव सङ्गीत = उच्च भयानक सङ्गीत। सृष्टि = उत्पत्ति। चरम = अपार। ध्वंसमयी = विनाश

करने वाली। समारम्भ = आरम्भ।

रुद्र ... ... होता है।

भावार्थ— युद्ध भी एक प्रकार का संगीत है। वहां मारकाट मचते ही शिव की तुरही अपना गायन शब्द करती है युद्ध की देवी, भैरों अपना भयङ्कर नृत्य करती है और योद्धाओं के शस्त्र बाजे बन जाते हैं इस प्रकार नाद, नृत्य और वाद्य इन तीनों को मिलाकर एक भयङ्कर भैरव सङ्गीतकी उत्पत्ति होजाती है। सच्चे वीर मरण को अवश्य भावी समझ उसे सदैव रण में अपने नेत्रों से देखने को प्रस्तुत रहते हैं। जीवन के मृत्यु रूपी रहस्य का वास्तविक अपूर्व सौन्दर्य युद्ध में देखते २ ही प्राणों पर खेल जाना है। यद्यपि वह भयङ्करता लिये होता है। सच्चे शूर ही ऐसी मृत्युको सहन करते हैं। विनाश करनेवाली महामाया रूपी प्रकृति का यह युद्ध दृश्य नित्यप्रति का संगीत है। किन्तु उस सङ्गीत को श्रवण करनेके लिये साहसशील और बलिष्ट मनुष्यों की आवश्यकता है। इस अत्याचार के श्मशान रूपी युद्ध क्षेत्र में कल्याण तथा सत्यता एवं सुन्दरता से युक्त गायन का आरम्भ होता है।

नोट— सङ्गीत = नृत्य + वाद्य + गीत।

अत्याचार का श्मशान = युद्ध क्षेत्र, क्योंकि वहाँ वीरों के मरण से सैंकड़ों स्त्रियाँ विधवा तथा सैंकड़ों माताएँ पुत्र विहीन हो जाती हैं। मङ्गल + शिव + सत्य = युद्ध में इन बातोंका मिश्रण इसकारण होता हैकि रणमें मरण वीर स्वर्ग प्राप्त करता है। रण में मृत्यु प्राप्त करनेमें वीरकी शोभाही है। जैसा गीता में कहा है

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्य से मही

अर्थात मरने पर स्वर्ग तथा जीतने पर स्वर्ग प्राप्त होता है। युद्ध में हंसते हंसते प्राण गंवा देना वीरगण एक प्रकार का खेल ही समझते हैं।

लह=चिनगारी। अनूप=अनोखा। थल=स्थल। अमल =स्वच्छ। मारुत=वायु। व्योम=आकाश। प्रेम विभोर= प्रेम में डूबी हुई वा सुध बुध खोई हुई।

भरा ... ... रूप।

अन्वय-किसी छलिया का अमल अनूप रूप नैनों में मन में भरा जल-थल-मारुत व्योम में जो सब ओर छाया है मैं पागल प्रेमविभोर (उसे) खोज खोज कर खो गई। यह कूप भांग से भरा हुआ है।

अर्थ— किसी प्रेमी हृदय चुराने वाले का रूप नेत्रों में तथा मन में भरा हुआ है अर्थात नेत्रों में जो रूप समाया हुआ है। हृदय में भी वही बसा हुआ है पृथ्वी, जल, आकाश सर्वत्र वही छाया है। प्रेम से पगली सुध भूली हुई मैं उस सर्वत्र व्याप्त को खोज २ कर हार गई यह प्रेमकूप भांगके नशेसे भरा हुआ है

नोट—संसार सर्वव्यापक घट घट वासी ईश्वर को हृदय में न देख बाहर खोजता है।

पृष्ठ ४६ शब्दार्थ— धमनी=नाड़ी। तन्त्री=वीणा।

धमनी ... ... रूप।

भावार्थ— नाड़ी रूपी वीणा शब्द करती रहती है जिसे प्राणी कान लगाकर सुनता है अर्थात प्रत्येक व्यतीत होने वाली जीवन घड़ी में ईश्वर का ध्यान करने पर मनुष्य अपने उस जीवन धन को पा लेता है। वह हम से फिर छाया तथा धूप की भाँति हिला मिला हो जाता है अर्थात जीवन की प्रत्येक दशा में हम उसे अपने समीप पाते हैं।

शब्दार्थ— गिरि-संकट=पर्वती आक्रमण।

पष्ठ ४७—वरणीय=वरने योग्य। विसर्जन=त्याग। मध्याह्न के भीषण सूर्य के समान=दोपहरी के भयानक प्रचंड सूर्य की

भाँति वीरता से। आगे=भावी जीवन में। पीछे=मृत्यु के पश्चात। आलोक=यश, कीर्ति।

भैरव ... ... रहे।

अर्थ— रणक्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी भैरों के तुरही नाद की प्रबल ध्वनि की भाँति अपनी सिंहनाद हुंकृत ध्वनियों से अपने विपक्षियों को भयभीत कर दो। रणक्षेत्र में बढ़ते चले चलो पीछे पग न हटाना। यदि गिरो भी तो प्रचण्ड सूर्य की भांति वीरता से मरना जिससे इहलोक तथा परलोक में तुम्हारी अचल धवलयश चन्द्रिका सदैव छिटकती रहे तथा तुम संसारमें अचल कीर्ति सदैव छोड़ जाओ।

द्वितीय अङ्क

पृष्ठ ४८ शब्दार्थ—प्रवञ्चना—छलना। कृतघ्नता=किये हुये उपकार को मेट देना। पतित=गिरी हुई। वज्र कठोर=पविसदृश। शतदल=कमल। पारिजात=देव वृक्ष।

नोट :— देववृक्ष के पाँच नाम हैं—

(१) मन्दार, (२) पारिजात, (३) सन्तान, (४) कल्पवृक्ष, (५) हरिचन्दन।

सौरभ=सुगन्ध। बिठा रखने की=पकड़ लेने की। प्रतिमा =मूर्ति। स्थायी कीर्ति=अचल यश।

पवित्रता ... ... सकता है।

भावार्थ— पवित्रता मलिनता द्वारा ही नापी जा सकती है। दोनों सापेक्षक हैं। एक के बिना दूसरी का अस्तित्व ही सम्भव नहीं। यदि संसार में मलिनता न रहे तो पवित्रता के मूल्य को कौन समझे। सुख की सुखदाता को ठीक बतलाने वाला भी दुख ही है क्यों कि यदि सदैव सुख ही रहे तो उसमें कोई विशेषता न रह जाय। जब मनुष्यपर आपत्ति आकर पड़ती है तभी वह सुख के वास्तविक मूल्य को समझता है। इसी प्रकार पुण्य के मूल्य को आँकने वाला पाप है। पाप के सामने ही हम पुण्यको उससे ऊंचा ठहरा सकते हैं। यदि संसार में पापी न रहें तो हम उनके अभाव में धर्मात्माओं के वास्तविक गुणों को नहीं परख सकते

सत् और असत्, भले और बुरे दोनों के मेल का नाम संसार है

"सगुण क्षीर अवगुण जलताता, मिलहिं रचहि प्रपञ्च विधाता।"

आकाश के तारे दूरके केवल नेत्रोंको ही सुन्दर प्रतीत होते हैं किन्तु कौन जानता है कि वह कुसुम समान कोमल हैं अथवा वज्र की भाँति कठोर "There is no rose but has a thorn" 'All that glitter is not gold" के अनुसार सुन्दर तथा कोमलसे कोमल वस्तुमें भी कुरूपता तथा कठोरता हो सकती है। मधुर स्वर वाली कोकिला यद्यपि अपनी मीठी सुरीली तान से आकाश को कोमल शब्द के गुञ्जारितकर देती है किन्तु हम उस स्वर को साकार रूप में नहीं देख सकते। कमल तथा देवदारू जैसे सुन्दर पुष्प तथा वृक्ष की सुगन्ध पकड़ी नहीं जा सकती। फिर भी इहलोक में ही तारागणों से भी श्वेततर तथा कोमल स्वर्गिक सङ्गीत की साकार मूर्ति तथा अचल यश सुगन्ध वाले मनुष्य पाये जाते हैं। इन दिव्य पुरुषों को देख कर ही हम यह अनुमान कर लेते हैं कि स्वर्ग में भी ऐसे ही प्राणी होंगे।

पृष्ठ ४९-पराजित=हारना, विजित। असाधारण महत्व=विशेश बड़प्पन (Extraordinary greatness) उदंड=उच्छृङ्खल अभिभूत=पराजित। आदर्श=प्रतीक (model) नीड़=घोंसला।

जहां ... ... अभागा है।

भावार्थ—बिना स्वयं देखे हुये स्वर्ग केवल सुखद कल्पना का लोक है। अतएव जिस स्थान पर हम अपनी सुखद कल्पनाशक्ति द्वारा स्वर्ग के समान गुणों वाला ही है। एक अनुकरणीय प्रतीक स्थापित करलें बस वहीं स्वर्ग है। आनन्द का विहार स्थल, प्रेम का आगार वही स्वर्ग की उपाधि से भूषित किया जाता है। उसे

खोजने के लिये हमें कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि वह स्वर्ग इसी पृथ्वी पर है। जिस मनुष्य ने इस प्रकार के स्वर्ग को इसी भूतल पर न पाया वह दुर्भागी है।

शब्दार्थ— मन ढीला हुआ=प्रेम से खस गया। राजकीय प्रभाव=स्कन्दगुप्त के युवराज होने का प्रभाव।

पृष्ठ ५०— क्षणिक उल्लास=क्षण मात्र का हर्ष। उन्मत्त भावना=उन्माद से भरा विचार।

विजय ... ... है।

भावार्थ- रणमें विजयी होने की क्षणमात्रकी प्रसन्नता अन्य शत्रुओं को परास्त कर देने वाली भूख को नहीं मिटा सकती। वीरों का रण रूपी कार्य या धंधा भी एक उन्माद की लहर है जिससे तरंगित होकर या तो मनुष्य प्राण त्याग देता है अथवा कुछ क्षणों के लिये विजय से हर्षित हो उठता है। त्याग संसार में सर्वोतम वस्तु है। दूसरे शब्दों में इसी को महानता कहते हैं। वास्तविक वीर वही हैं जो सदैव प्राणोंको हथेली पर रक्ख रहें।

शब्दार्थ— कर्मण्य=कर्म में रत। ऊर्जित=दृढ़। युद्धस्व विगत ज्वरः = शोक त्याग कर युद्ध करो।

सम्पूर्ण ... ... करता है।

अर्थ— समस्त संसार कर्त्तव्य परायण वीरों की चित्रशाला है। वीरता अपने पैरों पर खड़ी होती है उसे दूसरों के बल अथवा आश्रय पर खड़ा होना नहीं आता, मनुष्यों में जिस समय यह धारणा प्रबल हो जाती है तभी उनकी उन्नति होती है। जीवनयुद्ध (Struggle for existence) में वही जयी होता है जो सदैव "दुख शोक त्याग कर युद्ध करो" वाले गीता के सिद्धान्त को उच्च ध्वनि से अपने कर्ण कुहरों में ध्वनित होते पाता है।

शब्दार्थ—विडम्बना=लज्जापूर्ण, व्यर्थ घृणित. शुभ्र=श्वेत। निभृत=एकान्त। कागर=तटस्थ, निकुंज।

ऐसा ... ... सका हूँ।

भावार्थ—युद्ध का जीवन जिसमें रात दिन युद्ध के अतिरिक्त कुछ न हो घृणा योग्य है। क्यों कि रंजित राशियों से शरद ऋतु का स्वच्छ चन्द्रमा जिस समय अपनी सुखद चन्द्रिका छिटका कर संसार को प्रेम तथा शान्ति का पाठ पढ़ा रहा हो उस समय में क्रोधातुर हो यदि हम रक्त नेत्रों से दूसरों को घूरा करें, यदि ऋतुराज के सुन्दर प्रातःकालमें एकान्त निकुंजों में निशब्द सरल गति से प्रवाहित होने वाली सरिता को भी हम युद्ध में शत्रुओं का उष्ण लहू बहाकर रक्त कर दें तो अत्यन्त शोक की बात है। प्रेम के स्रोत, को संसार से नितान्त शुष्क कर देना है। मनुष्य का जीवन— लक्ष्य केवल युद्ध न होकर प्रेम की गोद में भी खेलता है। चाहे वह प्रेम का गुप्त भेद अभी तक मैंन भी अनुभव किया हो परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है आनन्द और स्नेह का अञ्चल भी सँसार में व्याप्त होना चाहिये रक्त-सारिताके साथ प्रेम सरिता में भी स्नान करना चाहिये।

पृष्ठ ५१ शब्दार्थ— उत्तेजित = उत्साहित। केन्द्र = मध्य (center) समग्र=समस्त।

यदि··· ... ... पड़ेगा।

अर्थ— यदि स्वय युवराज ही इतनी विरक्तता तथा दुर्बलता की बातें करेंगे तब तो समस्त राज्य में अत्याचारों की धूम मच जायगी। अतएव प्रजा के अधिकारों की रक्षा करने के लिये प्रथम आपको अपने राज्याधिकारकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। उदासीन रहने से कार्य न बनेगा।

कहीं ... ... लगा।

भावार्थ— विजया ने स्कन्दगुप्तके प्रति अपने प्रेम का कारण राजकीय प्रभाव बताया था इसी कारण देव सेना उसपर व्यङ्ग करके कहती है कि "कहीं" जिस युवराजत्व के कारण तुम स्कंद को प्रेम करने लगी थीं उसमें कुछ न्यूनता तो नहीं आने लगी है। राज्य के प्रति उदासीन होनेके कारण राज्य लक्ष्मी न मिलने का भय स्कन्दगुप्त के प्रति तुम्हारे प्रेम को तो नहीं घटाने लगा है ?

शब्दार्थ— निर्दय वाक्यवाण=कठोर व्यङ्ग।

पृष्ठ ५२— धनवानों ... ... ऐश्वर्य।

भावार्थ— धनी मनुष्य केवल एक ही नाम रखते हैं वह नाम है— ऐश्वर्य। ऐश्वर्य विहीन मनुष्य को वह कुछ भी नहीं समझते। विद्या, सौन्दर्य, बल, पवित्रता आदि गुणों से मनुष्य का मूल्य नहीं लगाते बल्कि धनी पुरुष में इन सब गुणों को समझते हैं। अर्थात धनहीन निर्धन पुरुष को ऐश्वर्य विहीन होने के कारण वह प्रथम कोटि का तुच्छ समझते हैं।

नोट— "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते" के अनुसार धनवान में ही सब गुण समझे जाते हैं उर्दू में भी कहा है :—

"गुरबत तेरे तीन नाम लुच्चा गुण्डा, बेईमान"।

शब्दार्थ— प्रशस्त वक्ष=उन्नत विशाल वक्षस्थल वाले। महत्वाकांक्षी=बड़ी बड़ी आशायें रखने वाला। क्रय करना=मोल लेना वसन=वसन।

एक ... ... तान।

भावार्थ— पुरुष को वशीभूत करने के लिये रूप आदि के अतिरिक्त कुछ रूठने तथा नखरे दिखाना भी आवश्यक है। रूठने की मुद्रा बनाये रखने से मनुष्य सदैव मनाने का प्रयास

करता रहता है। वह जानने के लिये कि प्रिया किस बात पर रुष्ट है वह हर प्रकार का प्रयत्न करता है उसके मनाने के चाटुकार शब्दों पर कुछ अश्रुपात करे तथा फिर उसे पूर्ण रूप से फंसा जान धीमी मधुर सङ्गीत ध्वनि का आनन्द ले।

नोट— यद्यपि रोने में गाना अच्छा नहीं लगता किन्तु चूंकि देवसेना को गाने का रोग है। वह बिना इसके नहीं रह सकती उसने यहां भी गाना रख दिया।

पृष्ठ ५३ शब्दार्थ— सम=एकता (harmony)। लय= tune। विकृत=बिगाड़ना। काकली=कलरव ध्वनि।

प्रत्येक ... ... है।

भावार्थ— सृष्टि छोटे २ अँशों में भी एक प्रकार की समता एकता, तथा सादृश्यता है, तरुओं की प्रत्येक हरित वर्ण की पत्ती एक लय के साथ हिलती है मनुष्य ने अपना स्वर स्वयं बिगाड़ लिया है वह समस्त संसार की बजती हुई वीणा में स्वर मिलाने का प्रयास नहीं करता। अपनी विद्वता के अभिमान में चूर्ण हो कर वह अपने प्राकृतिक स्वर को कृतिम सा बना लेता है। स्वर साम्य त्याग देता है। पक्षियों तक के चहचहानेमें, कलकल ध्वनि में, उनकी जल की छल छल में, मधुर कलरव ध्वनि में एक प्रकार का मृदु गान है।

शब्दार्थ— प्रभात=प्रातःकाल। पारिजात वृक्ष=देव वृक्ष।

पृष्ठ ५४— अन्तर में=हृदय में। सौरभ=सुगन्ध।

घने ... ... गले।

अर्थ— घिनके प्रेम वृक्ष के नीचे बैठ कर संसार के ताप से तप्त और दग्ध, मनुष्य को छाया का सेवन करना चाहिये। यहां पर विश्वास ही छाया है श्रद्धा सरिता का तट है जिसके किनारे की पुष्प रज युक्त बालू आँसुओं से सिंची हुई तथा कोमल है।

अतएव यहाँ दूसरों को ठगने का काम नहीं। वार्तालाप रूपी वायु से भाव रूपी पुष्प चू कर हृदय का व्रण भर देते हैं। मन की दुखभरी कथा को बिना सुने सीधे मतचले जाओ। सौन्दर्य रूपी रस की मधुरिया का पान करके उससे जीवन रूपी बेल को सींच सुख से समस्त जीवन प्रेम से गले मिलकर, इस माया के खेल में व्यतीत करो।

अलङ्कार— श्लेश बात=वार्तालाप, तथा वायु। श्रद्धा सरिताकूल, जीवन-बेल में रूपक है।

पृष्ठ ५५— प्रकरण=सिलसिला, सजधज। भौंहों के नीचे छाया=एक सोचकी मुद्रा। क्रन्दन=रुदन। प्रवञ्चना=ठगना।

जी ... ... है।

अर्थ— मनुष्य अपने हृदय के भावों को मन ही मन में रखता है अर्थात अपनी हृदय-लहरी को स्त्रियों की भांति ओरों पर प्रकट कर देने में वह अपनी सीमा का उलङ्घन समझता है। जब मनुष्य का हृदय रोता हुआ भी अर्थात विपत्ति की दशा में भी वह दूसरों को दुख सुनाने के स्थान पर स्वयं ही उसे हंसकर व्यतीत कर देता है। इस प्रकार वह एक प्रकार का छल सा करता है क्यों कि हृदय में दुखी होनेपर भी मुखपर प्रसन्नता का चिन्ह रखता है।

शब्दार्थ— देवोपम=देवताओं के तुल्य। वक्र लिपियों से अङ्कित है=बहुत से कष्टों से भरा पड़ा है। सर्वस्व अर्पित है=सब कुछ न्यौछावर है।

उदार ... ... है।

अर्थ— स्कन्दगुप्त एक उदार हृदय वीर है, देवताओं की भांति सुन्दर है तथा आर्यवर्त्त की सारी आशायें उसी पर लगी हैं वही उसे विपत्तिसे उभारेगा किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसके

भाग्य में बहुतसी विपत्तियाँ उठानी लिखी हैं। वह हृदयमें गौरव रखते हुये भी राज्य की ओर से विरक्त सा है। उसके नेत्रोंमें एक जीवन रखने वाली सजीव ज्योति प्रकट होती है।

नोट:— यहाँ स्कन्दगुप्त का चरित्र प्रदर्शित किया गया है।

पृष्ठ ५६ शब्दार्थ— प्रतीक्षा=बाट जोहना।

विश्वास ... ... जायगी।

अर्थ—संसार का चक्र पारस्परिक विश्वाससे ही चलता है। क्यों कि 'संशयात्मक विनश्यति' अर्थात संशय में पड़ने वाले मनुष्य का नाश हो जाता है।

भित्ति ... ... है।

भावार्थ— रहस्य बड़ी सावधानी तथा कठिना से छिप पाता है उसके उद्घारित करने वाले अनेकानेक होते हैं।

मुद्रा=ढङ्ग (mood)।

पृष्ठ ५७ शब्दार्थ— प्रचारित=फैलना।

पृष्ठ ५८— प्रलोभन=लोभ, लालच।

तुम ... ... अधर्म।

भावार्थ— प्रत्येक कर्म अपने नग्न रूप में शुद्ध है जब वह पाप वासना से युक्त हो जाता है तभी अपवित्र होता है। संसार तो जीवन की संग्राम भूमि है (field of battle) इसमें कायरता का जीवन तुच्छ जीवन है। जो हत्या युद्ध में उचित समझी जाती है वही बिना युद्ध के पाप है इसी से सिद्ध है कि हत्या अपने नग्न रूप में शुद्ध तथा पाप रहित है।

पृष्ठ ५६ शब्दार्थ— लकीर खिच गई=गहरा प्रभाव पड़ा।

पृष्ठ ६०— नियामक=नियम बनाने वाला। असाधारण =कठिन। धातु=(हास्य-व्यङ्ग) वीर्य, सोना, चांदि आदि।

पृष्ठ ६१ शब्दार्थ— मिट्टी जिसमें से सब निकलते हैं उर्दू में तथा अङ्गरेजी में शरीर के विषय में कहा है :—

'खाक का पुतला है यह और खाक में मिल जायगा।'

"Dust thou born to dust returnest"

उनकी मुक्ति शस्त्र से होगी=यहाँ श्लेष अलङ्कार से दो अर्थ है। (१) महादेवी की शस्त्रों से लड़कर रक्षा की जा सकती है और छुड़ाया जा सकता है। महादेवी की हत्या शस्त्र द्वारा होगी जिससे वह संसार के झगड़े मुक्ति पा जावे।

पृष्ठ ६२ शब्दार्थ—मदिरोन्मत्त=शराब के नशे में।

कादम्ब ... ... होगी।

अर्थ— बारहखड़ी 'क' से आरम्भ होती है अतएव 'क' से आरम्भ होने वाले तीनों शब्दों को वर्ण माला का पहला अक्षर कहा है जिनका अर्थ क्रमशः मदिरा, स्त्री और स्वर्ण है। मनुष्य इन्हीं तीनों में से किसी की चोट से या सब के लोभ में पड़ कर पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। यदि इनके लालच में मनुष्य न पड़े तो उसका किया हुआ कर्म कदापि कुकर्म न कहलावे। कर्म को यही तीन ककार कुकर्म बना देते हैं

शब्दार्थ— कमनीयता=सुन्दरता। मदिरा=श्लेष से दो अर्थ— (१) वारुणी, शराब (२) मदिरा एक टापू है।

पृष्ठ ६२, ६३— तुम ... ... है।

भावार्थ— स्त्रियाँ स्वयं पुरुषों को अपने ऊपर मोहित करती हैं वह अपनी वेषभूषा सजधज के बनाती हैं। नेत्रों को मटकाती हैं, अङ्गों को सकोड़ कर हाव भाव तथा कटाक्ष करती हैं। मटक कर चलना उन्हें आता है। इन बातों से पुरुष को उनके सम्बन्ध में एक इच्छा उत्पन्न होही जाती है। स्त्रियाँ अपने इस आचरण

से पुरुषों की दृष्टि का स्वयं आवाहन करती हैं। फिर पुरुष का क्या दोष उसे देखना ही पड़ता है।

शब्दार्थ— दुर्वृत्त=पापी। मद्यप=मदिरा पीने वाला। अपदार्थ=तुच्छ (नाचीज)।

पृष्ठ ६४ — काण्ड=घटना। दुष्कामना=बुरी इच्छा। जिस की=जिस महादेवी देवकी की।

पृष्ठ ६५—कुचक्रियों ... ... करूंगी।

भावार्थ— इतनी भयङ्कर बन जाऊंगी कि समस्त शत्रु तथा विद्रोही दल का नाश किये बिना शांति न लूंगी।

पृष्ठ ६६ — सौगन्ध=शपथ। विश्वासघात=कपट। प्रतिश्रुत=वचनबद्ध। पदवृद्धि=पदवी उन्नति।

पृष्ठ ६७— स्वजन=सगे सम्बन्धी। शिष्टाचार=सभ्य आचरण। सत्पथ=सन्मार्ग। अवलम्बन करें=चलें। दुर्दिन =विपत्ति। स्निग्ध=चिकनी, कोमल। विपद भञ्जन=कष्ट विदारक। असीम=अतुल। दुर्दान्त=अदमनीय। केतन=ध्वजा, पताका।

पृष्ठ ६७, ६८— पालना ... ... लहरें।

भावार्थ— प्रलय की लहरें झुलाने का पालना बन जाय, ज्वाला का वेग (ईश्वर कृपा) से शीतल हो जाता है करुणा के मेघ छा जाते हैं। कृपा स्वयं क्षण भर भी यदि मनुष्य को प्यार कर ले और इश्वर में दृढ़ विश्वास हो तो विपत्ति पास नहीं फटकती और सुख की पताका पहराने लगती है।

पृष्ठ ६९ शब्दार्थ—स्पर्धा=इच्छा। कलुषित=लाञ्छनित। अभेद्य=न भेदने योग्य।

पृष्ठ ७० —उद्यत=तत्पर। आमन्त्रित=आवाहन (invite)

पृष्ठ ७१—स्वत्वाधिकारी=(स्वत्व+अधिकारी) राज्य प्राप्त

करने वाली। ध्वंस=विनाश। निःशेष=बाकी। जघन्य=मार डालने योग्य।

पृष्ठ ७२ सुव्यस्था=उचित प्रबन्ध। त्राण=रक्षा। अनुष्ठान=शुभ कार्य। कदर्य्य=कायरता पूर्ण। लोहे को=कवच को। आर्त्त त्राण-परायण=दुखियों की रक्षा में रत। विभीषकाओं=आपत्तियों. भयों।

पृष्ठ ७३–अवहेलना=तिरस्कार, अनादर। बिपन=पीड़ित।

सर्वात्मा ... ... है।

भावार्थ— सब मनुष्यों की आत्मा अर्थात ईश्वर के स्वर में उसकी इच्छा में, तथा अपने को परहित में न्यौछावर कर देने की ताल में अपने पन को खो देना ही सुन्दर सङ्गीत है। भाग्यानुसार ही सब कुछ होता है। कर्त्ता ईश्वर है, अपने को कर्त्ता न समझकर ईश्वरीय प्रेरणासे अहङ्कार दूर रखकर कार्य करे।

नोटः— यहाँ गीता के भावों का दिग्दर्शन है— सर्वान्या— "अहमात्मा गुड़ाकेशो सर्वभूतेषु स्थितः अर्थात मैं (कृष्ण) ही सब मनुष्यों में आत्मा रूप से स्थित हूँ।

व्यक्तित्व का विस्मृत— 'अहङ्कार विमूढ़ात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते' मूर्ख मनुष्य ही अपने को कर्त्ता समझ बैठते हैं।

समष्टि=समूह। व्यष्टि=व्यक्ति, एक।

समष्टि ... ... है।

भावार्थ—मनुष्य सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है। किन्तु समाज भी मनुष्यों से बनता है। प्रत्येक मनुष्य उसका एक अङ्ग है संसार भर को प्रेम का पाठ पढ़ाना सब मनुष्यों के हित की चिन्ता करना मनुष्य का धर्म है। किन्तु समाज का अङ्ग होनेके कारण मनुष्य को अपने ऊपर से सारे प्रेम को नहीं उठा लेना चाहिये।

ममत्व=आपा चाहना।

इसी ... ... खोया।

भावार्थ—मनुष्य अपनेपन के तुच्छ भावके कारण मनुष्यता से दूर चला जाता है और क्रूर कर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है। इससे वह पूर्ण स्वार्थी बन जाता है, सँकुचित हृदय हो जाता है। विश्व प्रेम की भावना उसके हृदय से निकल जाती है। पुण्यता को वह खो बैठता है। ऐसा मनुष्य कभी अपनी आत्माञ्जली नहीं चढ़ा सकता जब तक कि वह अपने आपे तक ही सीमित रहने की भावना को न त्याग दे।

पृष्ठ ७४ शब्दार्थ— पदातिक = पैदल युद्ध करने वाला सैनिक। समभागी = बराबर, तुल्य। निर्मूल = नष्ट।

पृष्ठ ७५— विश्व साम्राज्य = सँसार भर का राज्य। महान = बड़ा।

पृष्ठ ७६—समस्त लाँछन = सब दोष। तिरस्कार = अवज्ञा। आग के फूल = रक्त की बूंदें। क्या.........बरसाती = क्या मेरी तलवार शत्रुओं का रक्त नहीं बहाती?

रणनाद = युद्ध गर्जना। प्रलयमेघ = विनाश सूचक बादल। कुचक्री = विद्रोही।

पृष्ठ ७७— वीरत्व-व्यञ्जक = वीरता प्रकट करने वाली। प्रपञ्च = मायाजाल। समर्पित कर देती = सौंप देती।

पृष्ठ ७८— वीरता ... ... न्याय।

अर्थ— वीर मनुष्य उन्मत्त नहीं होते। वह आंधी की भांति सोचे विचारे बिना कार्य नहीं कर डालते अर्थात दुर्बल सबल सभी को नहीं उखाड़ फेंकते दीन की रक्षा और प्रबल से युद्ध उनका ध्येय होता है। वीरता केवल शस्त्र-बल का ही नाम नहीं है ऐसी वीरतातो लूली होती है वह चलनहीं सकती अर्थात ऐसा वीर वीरता से प्रख्यात न हो सकेगा। देश देशान्तरों में उसकी वीरता पग-हीन होने के कारण न पहुँच सकेगी (वीरता

के साथ शरणागत, रक्षा, दया, क्षमा आदि के भाव भी होने आवश्यक हैं) वीरता की सुदृढ़ नींव न्याय अर्थात न्याय के बल पर खड़ी होने वाली वीरता ही सर्व श्रेष्ठ तथा उच्च कोटि की शुद्ध वीरता है।

जननियाँ = मातायें। अभिजात = उच्च।

पृष्ठ ७६–अभिलाषिनी = इच्छुक। न्यायाधिकरण = न्यायालय (Court)। अभियोग = दोष।

पृष्ठ ८०— प्रकृति = प्रतिमूर्ति। आत्मज = पुत्र, छाया। अशोभिमण्डित = यश से युक्त।

पृष्ठ ८१— तुमुल ध्वनि = घोर शब्द। दधीचि का दान।

सन्दर्भ— दधीचि उत्कृष्ट कोटि के दानी राजा हुये हैं। इन्होंने जीते जी अपनी हड्डी निकालकर इन्द्र को अस्त्र बनाने के लिये दे दी थी। कविवर वियोगी हरि ने भी अपनी 'वीर सतसुई' में इस दान की प्रशँसा करते हुये लिखा है :—

"सुरतरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि ढेर।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेर ॥"

अपहरण की जाती है = पदाक्रान्त = पददलित।

पृष्ठ ८२— असीम अनुकम्पा = अत्यन्त दया। संस्थापक = स्थापना करने वाले। क्षमता = योग्यता। उत्सर्ग करने को = त्यागने को।

पृष्ठ ८३—उग्र = प्रचण्ड, कठोर। यन्त्रणा = कष्ट।

पृष्ठ ८४—आजीवन = जीवन पर्यन्त। दुराचरण = दुष्टता। जगद्धात्री = संसार की माता।

पृष्ठ ८५— अक्षम्य = क्षमा न करने योग्य। प्रवञ्चित = ठगना।

पृष्ठ ८६— आज तू हार ... ... गई।

भावार्थ— देवसेना पहले ही से यह मन में समझ रही थी कि विजया स्कन्दगुप्त पर आसक्त है। अब भटार्क पर आसक्त होते देख स्कन्दगुप्त ने उससे प्रश्न किया 'परन्तु विजया तुमने यह क्या किया ? इससे प्रकट है कि स्कन्द भी विजया को प्रेम करता था। इसी कारण देवसेना कहती है कि विजया तू यद्यपि आज भटार्क पर अपने प्रेम का लक्ष्य बदलने के कारण हार गई किन्तु क्यों कि स्कन्द की बातों से यह प्रकट होने पर कि वह भी विजया को प्रेम करता है आज वह देवसेना से जीत गई क्यों कि देवसेना मन में स्कन्द को प्रेम करती थी किन्तु उसने देखा कि स्कन्द तो पहले ही हृदय दे चुका है।
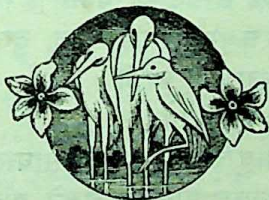
तृतीय अङ्क
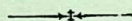
पृष्ठ ८७—शब्दार्थ विफल=व्यर्थ। दुरात्मा=पापी। भंडार =निधि। अर्गल=किवाड़ों के पीछे लगाने का मूसला। विडम्बना=दुख क्रूर कर्मों की। अवतारणा=कठोर कर्म करके भी। उग्रतारा=देवी। दुर्वह=न सहने योग्य।

पृष्ठ ८८— उमड़ कर ... ... कार।

अर्थ— हे प्रतिकूल रहने वाले प्रेमी मेरे नेत्रों की अश्रुधारा आज तुम्हारे निश्चल अंचल के कोर को भिगोने चली है। अब तो एकबार इस ओर घूमकर निहार लो। ऐ मेरे हृदय की गुप्त-तम मुस्कान, तेरा यह संसार कल्पनामय है। तुम्हारी बाट जोहने में आंखों की कोर रक्तवर्ण हो गई किन्तु तुम्हारे ध्यान में डूबी हुई (मे उसकी चिन्ता नहीं करती)।

परिचारिकायें=सेविकायें।

पृष्ठ ८९—मनोवृत्ति=इच्छा। कशाघात=कोड़े की मार। विपथगामिनी=प्रतिकूल मार्ग पर चलने वाली। अनुगृहित= कृतज्ञ। उत्तेजित=उत्साहित। सखि-जनोचित=सखियों के योग्य (जन+उचित)। कृत्या=मूर्तिमान। गर्त=गढ़ा। विवेक =ज्ञान। अवलम्बन=सहारा।

पृष्ठ ९०— उन्मत्त=पागल। प्रलाप=बकवाद। गाथा= कहानी। कूतूहल-गाथा=कूतूहल पूर्ण कहानी। (interesting Story)।

परन्तु ... ... विझाये ।

अर्थ— मैंने तुम्हारे प्रेम को सफल बनाने का प्रयास किया। हृदय में चाहती रहती कि स्कन्दगुप्त तुम्हें अपनी महिषी बनाले।

उपकारों ... ... दिया।

अर्थ— उपकार करने के मिस तुमने मेरे प्रेम के सुख रूपी स्वर्ग को छिपा दिया। टट्टी की ओट शिकार खेलकर स्वयं मेरा स्थान छीनने का प्रयत्न किया। मेरी मनोरथ बेल को जड़ समेत उखाड़ कर फेंक दिया।

नोट— विजया को सन्देह है कि देवसेना पहले से स्कंदगुप्त को प्रेम करती है।

अपनी ... ... है।

भावार्थ— अपनी मूर्खता का दोष दूसरों पर आलोपित न कर अर्थात स्वयं तूने ही भटार्क पर भी मन फेंककर स्कन्दगुप्त के मन को बदल दिया दूसरों की रोटी छीनने में अपने मुंह का टुकड़ा भी खो दिया मैं तो प्रेमको मूल्य देकर नहीं लेना चाहती।

नोटः— देवसेना के भाई बन्धु वर्मा ने विजयोपलक्ष में मालव का राज्य स्कन्दगुप्त को दिया। यदि बन्धु वर्मा की ओर से प्रस्ताव होता तो स्कन्द देवसेना से विवाह करने को प्रस्तुत हो जाता। इसी कारण देवसेना ने मूल्य देकर प्रणय लेने की बात कही है।

पृष्ठ ९९— अनुग्रह-लाभ=कृपा दृष्टि पाने की। आकाँक्षा =अभिलाषा। प्राज्ञापारमिता स्वरूपा=जिसके रूप को प्रज्ञ अर्थात बुद्धिमान ही जान सके। सुयोग=अवसर। सुसम्पन्न =सफल। लिप्त=मग्न।

पृष्ठ ९२— प्रतारणा=छल। कुसुम-कली=देवसेना।

एक ... ... चक्री।

अर्थ— एक भोली अबला देवसेना का बध करने के लिये इतने षड़यन्त्रों की आवश्यकता।

पृष्ठ ९३— वन्या=अग्नि । क्रिया-कलाप=कार्य समूह।

इस ... ... है।

भावार्थ— हृदय में, राज्य में तथा कुटुम्ब में सर्वत्र अशाँति का साम्राज्य होनेपर मैं राजा होकर क्या करूं? यह सब विद्रोह मेरे कारण उठ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त संसार की अशाँति का कारण मैं ही हूं। मैं ही विनाश सूचक धूम्रकेतु तारा हूँ। किन्तु मैं इच्छा रहित हू, स्वार्थ सिद्धि मुझे नहीं करनी मेरे मन में आशा की प्रबल वायु भी नहीं चल रही है। क्यों कि मैं गुप्त वंश का बंशज इसी कारण (उसकी मर्यादा तथा सम्मान सुरक्षित रखने के लिये) मैं इस सब गुप्त कार्य समूह में भाग ले लेता हूं। मेरे हृदय का कोई भी सच्चा पारखी स्तम्भित रह जायगा वह न हंस सकेगा न रो सकेगा। विजय का स्मरण कर के भी अब दुख होता है। मैने उसे प्रथम वार अपनी सुख रूपी रात्रि में संध्याकाल के तारे की भांति देखा था अर्थात उस दीप्त कोमलाङ्गी सुन्दरी को प्रेम कर अपने जीवन की शुष्कता रूपी अंधियारी को मेटने की धुन बांधी थी किन्तु रही विजया अब इतनी भयानक हो गई कि अग्नि के उष्ण तप्त गोले की भाँति चारों ओर से जलाने को तत्पर है। मेरे सम्मुख भयङ्कर आकृति का पिशाच प्रपञ्च बुद्धि भी भ्रमर कर रहा है।

नोट:— यहाँ भावी घटनाओं की ओर संकेत है। प्रथम अशान्ति से तो देवसेना, विजया आदि सब की अव्यवस्थित अवस्था की ओर संकेत है। स्कन्द विजयाको याद करता है जिस का रचा षड़यन्त्र अभी उसके सम्मुख उपस्थित होगा जिसमें वह वास्तव में उल्कापिंड ही जैसा कार्य करेगी। देवसेना को फांसने

वाला प्रपंच बुद्धि भी सन्मुख ही है।

पृष्ठ ९४— सँसार ... ... है।

भावार्थ— श्मशान सँसार का मौन शिक्षक है। वह कुछ न कहकर भी सब कुछ कह देता है। उसमें प्रवेश करते ही हमारे हृदय के विचार वैराग्य की ओर अग्रसर हो जाते हैं। नश्वर जगत की असारता का दृश्य सामने आ जाता है। अतएव यह मौन उपदेशक भय कारण नहीं है। वह तो क्षणिक जीवन की विलीनताके साथसाथ हमारी आत्माओं को भी पाप कर्म विषय लोलुपता आदि से हटाकर उच्च भावों की ओर प्रवृत कर देता है। अतएव भयानक न होकर श्मशान को तो सुन्दर, रम्य तथा श्रेष्ठ स्थान मानना चाहिये।

शब्दार्थ— तुषार=पाला। भाव-विभोर=विचार मग्न। कुरङ्गी सी कुमारी=हरिणी सी देवसेना।

पृष्ठ ९५—विस्मृति नीचे दबा दी गई=नष्ट होगई। ललाट-लिपि=भाग्य रेखा। सृजन=जन्म, उत्पत्ति। साधक=सिद्धि करने वाला।

पृष्ठ ९६— अवकाश=बीच समय, छुट्टी।

पृष्ठ ९७—स्वर्ण प्रभा=सोने सी कान्ति (Golden lustre) निर्वीर्य=दुर्बल, वीर्य रहित। प्रचुर=घना, अधिक। अभिमान =घमण्ड। उद्घाटन=खोलना।

पृष्ठ ९८—आत्मसात्=वशीभूत। निधन=मृत्यु। परिचालन करूँगा=सेनापति बनूंगा। मंजूषा=पिटारी।

पृष्ठ ९९— अनुयायी=मानने वाले। (Followers)

याज्ञिक=यज्ञ सम्बन्धी। व्यवस्था=दशा (Conditions). आयोजनाओं=तैयारियों (Preparations) आपानक=मदिरा। समारोह=उत्सव।

पृष्ठ १००—उपकरण=सामग्री। अपर्याप्त=न्यून।

जो ... ... हैं।

भावार्थ— वीर विलासी अवश्य होता है क्यों कि वीरता से शत्रु को पराजित करके उसके राज्य तथा लक्ष्मी का भोग किया जाता है। इन सुखों को भोगने के लिये ही वीर युद्धादि करता है। विलास भी वही जाति कर सकती है। जिसमें जीवन होगा क्यों कि मनुष्य ज्यों ज्यों सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ता जाता है त्यों त्यों उसकी आवश्यकताएं बढ़ती जाती हैं। जो राष्ट्र उन्नत होता है। उसी में ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य की वृद्धि पाई जाती है। वीर मनुष्यों में आनन्द तथा वीरता दोनों के भाव साथ २ रहते हैं। वह यदि एक कर्ण से खड्गों की झनकार सुनते हैं तो दूसरे कर्ण द्वारा कामनियों के नूपुरों का शब्द श्रवण करने को भी प्रस्ततुत रहते हैं।

नोट— भटार्क यहां अपने विचारों की पुष्टि कर रहा है। वास्तव में वीर के लिये उचित मात्रा का विलास होना चाहिये। विलास का अर्थ किसी वस्तु के उपभोग से है।

निर्वाणोन्मुख=निर्वाण की ओर=बौद्ध लोग मोक्ष को निर्वाण कहते हैं।

नासीर=अग्रभाग।

पृष्ठ १०१—कादम्ब=मदिरा। तिरस्कार=अवहेलना।

पृष्ठ १०२—जब ... ... है।

भावार्थ— क्योंकि देवसेना को गाने का रोग है वह उसका स्वभाव हो गया है अतएव गाते समय उसकी सङ्गीत ध्वनि हृदय से उठती है परन्तु उसका हास्य एक प्रकार की खिन्नता को आरम्भ को लिये होता है। केवल गाते समय वह हर्षित रहतो है अन्यथा उसके हास्य तक में रुदन छिपा रहता है।

पृष्ठ १०३—हरी ... ... है।

अर्थ— जिस प्रकार हरित कोमल तृणों में विकसित पुष्प शुभोभित होता है उसीप्रकार देवसेना तथा स्कन्दगुप्त के हर्ष से हरे मनोंमें प्रेम पुष्प विकसित होने लगा है।

आघात=आक्रमण। मर्म=हृदय।

निर्दय ... ... है।

अर्थ— कटु कटाक्षों के सहने की क्षमता मेरे कोमल हृदय में नहीं है।

नीरव=नि.शब्द, शांत। कचोरना=खसोटना।

यह ... ... करेगा।

अर्थ— यह थोड़ा सा रुदन ही अत्यन्त सुखदाई होगा।

प्रणय-कलह=प्रेम का क्लेश वा झगड़ा। अनुरोध=हठ।

आंखें ... ... हूँ।

भावार्थ—प्रेम का अंकुर नेत्रों द्वारा उत्पन्न होता है (स्कंद को इन नेत्रों से देखकर ही यह प्रेम का विवाद छिड़ा) चित्त पर उसका उत्तेजक प्रभाव पड़ा अर्थात मन सदैव उसे चाहता रहता है, किन्तु बुद्धि (कुल मर्य्यादा, ललनासुलभ, लज्जा आदि को दृष्टि में रखकर फटकार लगा दी। इसी मार्ग में अधिक बढ़ने से रोकती है। इस ध्यान मग्नतामें कर्ण अपना कार्य छोड़ बैठते हैं। मैं इन सब इन्द्रियों के झगड़े को समाप्तकर उन्हें फिर से स्वाभाविक दशा में लाकर हृदय सम्हाल कर इसी झगडने वाले शरीर रूपी गृहस्थ में इन्द्रिय रूपी कुटुम्ब को जुटाती हूँ।

अलङ्कार—असङ्गती यहां कारण कार्य अन्य अन्य स्थानों पर हुये हैं, प्रेम नेत्रों ने जोड़ा, उत्तेजना चित्त में हुई, फटकार बुद्धि ने लगाई, निष्क्रमण्य मन हुआ।

पृष्ठ १०४ माझी ! ... ... झेलोगे ।

भावार्थ— हे केवट यदि तुम में साहस हुआ तो खेलोगे अर्थात नाव को पार लगा दोगे । जीर्ण नाव पथिकों से भरी हुई है वर्षा में खेना कठिन होगा । स्वच्छ नील मेघों की छाया में जल समूह की छल माया में अपना बल देखोगे ? अज्ञात तट से मदमाती लहरें पृथ्वी और आकाश के कोर को चूमती आती हैं । क्या तुममें उनलहरों के आघातों के सहन करनेकी शक्ति है ।

पृष्ठ १०५— वीरगति को प्राप्त करते हुये=स्वर्गवास हो गया । वीर शैय्या पर सोते सोते=मरते मरते । स्कन्धावार=डेरा । महानुभावता=बड़प्पन । आततायी=अत्याचारी । साम-गान=साम वेद की ध्वनि ।

पृष्ठ १०६—व्यवस्था=प्रबन्ध ।

पृष्ठ १०७—पारण=व्रत के खोलने का भोजन ।

पृष्ठ १०८ शब्दार्थ—विश्वविजयनी = संसार को जीतने वाली । सुरसुन्दरी=देवताओं की स्त्री । नन्दन=देव-बन । नृशंसता=कठोरता । आतङ्क=भय । विश्वविख्यात=संसार प्रसिद्ध । प्रत्यावर्त्तन=लौटना ।

तुम्हारी ... ... उठेगी ।

अर्थ— तुम्हारी संसार जयी वीर कहानी देवताओं की स्त्रियाँ भी नन्दन कानन में अपनी वीणाओं पर अलापेंगी । तुम्हारी यश कीर्ति स्वर्ग में भी गुञ्जारित होगी ।

तुम्हारे ... ... है ।

भावार्थ-तुमने क्षमा और दया सहित अपने शस्त्रोंका प्रयोग करके आततायी हूणों को यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि केवल कठोरता, पाषाण हृदयताही से मनुष्य युद्धमें विजयी नहीं होता ।

पृष्ठ १०६— पटु=कुशल, प्रवीण।

,, ११०— विश्वासघात=धोखा ।

,, १११— प्रतिज्ञा=बात । क्रय=मोल लेना । अविश्वास =सन्देह ।

,, ११२— गिरि संकट=पर्वती युद्ध । नगरहार=नाम (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

,, ११३— गान्धार-युद्ध=गान्धार देशमें होने वाला युद्ध ।

,, ११४— परिचालन करना=सेनापति बनना ।

चतुर्थ अङ्क

पृष्ठ ११५— प्रकोष्ठ = महल के भीतर का कमरा ।

नहीं ... ... जायगा ।

भावार्थ— तुम्हारा पुरगुप्त को राजा बनाने का मनोरथ विफल कर दिया जायगा ।

पृष्ठ ११६— प्रणयवञ्चिता = प्रेम छिन जाने वाली । हृत-सर्वस्वा = सब कुछ छीन लिया जाने वाली । विस्फोर = फटना (erruption) । वीभत्स = भयानक ।

प्रणय ... ... होती हैं ।

भावार्थ— वह स्त्रियां जिनका प्रेमी उनसे छीन लिया जाता है बड़ी कठोरता से प्रतिशोध के लिये प्रेम मार्ग को विघ्न रहित बनाने की वज्र की सी दृढ़ता से काम लेती हैं । जो सौत उसके प्रेमी पर अपना पाश डालती है उसके लिये अपने सर्वस्व को जाता देख अबला सबला बनजाती है, पर्वतीय प्रदेश की सरिता की भाँति वेग धारण कर लेती है । ज्वालामुखी पर्वत की उद्भूत चिनगारियोंसे भी डरावनी तथा प्रलयकाल की अग्नि की लपटों से भी अधिक लहरित हो जाती है ।

पृष्ठ ११७— कंटकित = कांटों से युक्त । दावाग्नि = बन की अग्नि । गर्व-शैलशृङ्ग = अभिमानरूपी पर्वत की चोटी । वाँछा = इच्छा ।

दुर्बल ... ... बलि हो।

भावार्थ—स्त्री का हृदय अत्यन्त दुर्बल होता है। वह तनिक सी दुःख रूपी अग्नि से तप्त वा व्याकुल हो जाता है। तनिक सा सुख रूपी शीतल हाथ पाकर प्रसन्न तथा शीतल हो जाता है। क्रोध में वह प्रिय से प्रिय सम्बन्धी को भी गालियाँ सुना देती है, विष से बुझे व्यङ्ग वाण छोड़ती है। जिन मनुष्यों पर उसे कृपा रखनी चाहिये. जो उससे कुछ उपहार प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उनकी तनिक सी भूल पर वह उनकी अवज्ञा और अनादर कर देती है इसके दूसरी ओर वह परायों पर प्राण न्यौछावर करने को तत्पर हो जाती है। भोले निरीह पुरुषों पर कृपा कोर करते समय हम अपने स्वार्थ को भूल जाते हैं। यदि स्वार्थ दृष्टि में रहे तो हम किसी के साथ सहानुभूति न प्रकट कर सकें क्षमा शील तथा उदार वही है जो स्वार्थ को त्याग देता है।

पष्ठ ११८—अनियन्त्रित = उच्छृङ्खल। शङ्का से = स्कन्दगुप्त को प्रेम करने के सन्देह से। दूसरे को = भटार्क को। उन्हें = विजया अनन्त देवी आदि को।

पृष्ठ ११९— प्रशस्त = स्वच्छ। विस्मृत करो = भूल जाओ। परिस्थिति = दशा। राजमार्ग = सड़क।

पृष्ठ १२०— मर मर कर जीना = प्रेम में मनुष्य मर मर कर जीता है। घिनौना = घृणित।

पृष्ठ १२१— कुम्भा ... ... कहाँ है।

भावार्थ— स्कन्दगुप्त को कुम्भा की तरङ्गित लहरों ने ढक लिया है, वह हिम में समा गया है।

पृष्ठ १२२— सूतिका-ग्रह = शिशु के उत्पन्न होने का स्थान जिसे सोवड़ कहते हैं।

अन्त्येष्टि-क्रिया = मृतक-संस्कार।

पृष्ठ १२३— अपहृत = छीना हुआ। विधान = नियम। अर्थ = धन। भृति = वेतन।

पृष्ठ १२४— कोषाध्यक्ष = खजानची (treasurer) अवगुण्ठन = घूघूंठ। भ्रम-निवारण = सन्देह मिटाना। अभिशाप = पाप।

मेरे ... ... डाला।

भावार्थ— मेरे रिक्त भाग्य रूपी आकाश को मन्दिर का द्वार उन्मुक्त कर तुमने नींद से भरी ऊषा की भांति झाँका था मुझ निर्धन की तुम धन थीं मेरी गृह लक्ष्मी होनेके कारण सदैव मुझ पर स्वर्ण वर्षा करती थीं। किन्तु आज उसी धन के कारण तुमने अपने देवकानन के विकसित पुष्प सदृश अपके जीवन को बेच डाला।

पृष्ठ १२५— धुंधली = कलुषित। नीहार कणिका = ओस की बूंद। निर्वासित = देश से निकाले हुये। पुरस्कार = ईनाम।

पृष्ठ १२६— शेष पर्यङ्क शायी = शेषनाग की शैय्या बनाकर सोने वाले। सुषुप्तिनाथ = सुषुप्ति के स्वामी, मनुष्य की चार अवस्थायें होती हैं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, अन्तिम तुरीयावस्था केवल योगियों की होती है। सुषुप्तिमें मनुष्य अचेत घोर निन्द्रा में पड़ा रहता है।

आलस्य ... ... पलट।

भावार्थ— इतने पाप के बढ़ जाने पर भी अवतार न लेने वाले आलस्य के समुद्र में शेषनाग की शैय्या पर सोने वाले, प्रगाढ़ निद्रा में अचेत पड़े हुये विष्णु की निद्रा भङ्ग हो जावेगी। समुद्र से रत्नोंकी पंक्तियाँ लाकर भारतवर्ष की भूमि पर वार दी

जायंगी। जागृति के अनेक गीत गाये गये, हृदय के भाव प्रकट किये गये परन्तु फिर भी पासा न पलटा।

पृष्ठ १२७ नोटः— मातृगुप्त की भाषा काल्पनिक है।

वयस्य=मित्र। पर्यटन=भ्रमण। आबद्ध=बंधी हुई। विकीर्ण=फैलाना। सब से ऊंचा शृङ्ग=हिमालय। सिरहाने=उत्तर में। महाबोधि बिहार=बौद्ध आश्रम। सङ्घ महास्थविर=संघ के नेता। निर्वाण लाभ=मोक्ष प्राप्ति।

पृष्ठ १२८— अनर्थ=पाप, बुराई। चतुष्पथ=चौराहा। चैत्य=चबूतरा।

पृष्ठ १२९— अन्तर विद्रोह=द्वेष। कर्णधार=मल्लाह। पोत=जहाज। क्षुद्र=थोड़ी। वितारित=हार खाकर लौटे हुये। यज्ञयूप=यज्ञके खम्भे। अवध=विपरीत, उल्टी। विश्वनियन्ता=ईश्वर।

पृष्ठ १३०—चरणोंमें न बैठेगी=सेवक न बनेगी। अहकार मूलक=अभिमान से उत्पन्न। आत्मवाद=आत्मा को प्रधानता देने वाला मत। तथागत=बुद्ध। ज्ञान-रण भूमि के प्रधान मल्ल=बुद्ध देव। समक्ष=सन्मुख।

नोट— प्रसाद जी बौद्धमत के स्वयं परिपोषक हैं। उनकी लेखनी इसकी साक्षी है।

विश्वात्मवाद=समस्त प्राणियां में एक ही आत्मा का मानना। नेति=न+इति=यह नहीं है। अनात्मवाद=आत्मा को ईश्वर का स्वरूप न मानना।

अहङ्कार ... ... है।

भावार्थ— गौतम ने आर्य धम के अभिमान मूलक आत्म वाद का खण्डन किया किन्तु विश्वात्मवाद को अर्थात विश्व में व्याप्त आत्मवाद को वह न मिटा सके क्यों कि यदि वह सब

प्राणियों में एक आत्मा न मानते तो क्यों अहिंसा का प्रचार करते। गौतम को आत्मवाद के विरुद्ध जाने में आर्य धर्म के उपनिषदों के नेति नेति कहने से सहायता मिली क्यों कि जब उस ईश्वर का कोई स्वरूप ही नहीं है तो आत्मा को ही उसका रूप किस प्रकार कहा जाय। इसी सिद्धान्त को मध्यमा प्रतिपदा कहा जाता है। व्यक्तिगत रूप में देखने पर आत्मा के समान कोइ नहीं ठहरता।

नोटः— व्यक्तिरूप से जो आत्मा है, समष्टि रूप से वही विश्वात्मा।

कुचक्र = षडयन्त्र।

पृष्ठ १३१—नियुक्त = लगाना। नृशंस = अत्याचारी। त्रस्य = भयभीत। दूसरों के अर्थ कटी वृत्ति = नियमानुसार ब्राह्मणों का कर्तव्ययज्ञ करना कराना दान देना लेना है, क्षत्रियों का युद्ध, वैश्यों का वाणिज्य तथा शूद्रों का सेवा। इसके विरुद्ध आचरण गौण (secondary) अप्रधान।

पृष्ठ १३२— सर्व ··· ··· ··· ··· ··· तुष्नुयात।

अर्थ— सब सुखी रहे, सब आपत्ति तथा रोग विहीन रहे। सब का कल्याण हो किसी को दुख न दबावे।

मनुष्य ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· होंगे।

भावार्थ — मनुष्य में बहुत सी त्रुटियाँ तथा न्यूनतायें होती हैं। जिनके कारण वह पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब कर्त्ता अपूर्ण होता है तो उसके द्वारा किया गया कार्य भी अधूरा होता है। इसी कारण सत्य का प्रकाश भी अंश रूप से कर सकता है पूर्ण रूप से नहीं। प्रत्येक वस्तु के विकाश (evolution) का यही भेद है (कि वह पूर्ण नहीं) अपूर्ण होने पर ही पूर्ण बनने का यत्न किया जाता है इसी लिये मनुष्य यह समझ कर ही

कि तेरा ज्ञान अधूरा है उसकी वृद्धि का प्रयत्न करता हूँ। धर्म के फैलाने वाले अपने में पूर्णता न रखने के कारण ही कुछ इधर उधर यन्त्र तन्त्र की पहले प्रचलित मिथ्या बातों का आधार लेते हैं। समय तथा देश की स्थिति के अनुसार सभी धर्मों में परिवर्तन होता जा रहा है।

पृष्ठ १३३— मूल=प्रधान।

अपने ... ... करें।

भावार्थ— अपने सद्विचार रूपी पुष्प वैमनस्य के दुख से दग्ध मनुष्यों के कठोर पथ में बिछावे। अर्थात अपने श्रेष्ठ विचारों द्वारा मनुष्यों की खिन्नताओं को नष्ट कर दे।

बोधिसत्व = बौद्ध। मनवृत्ति = इच्छा।

पृष्ठ १३४— रक्त-पिपासु धार्मिक=रक्त के प्यासे धार्मिक। धार्मिक कहलाकर भी हिंसा करने वाले।

पृष्ठ १३५—लचीले=कोमल। उद्बोधन=जागृति। सन्नद्ध =तत्पर, कमर कसना।

सुकवि ... ... जायं।

भावार्थ— यहां प्रसादजी वर्तमान भारत की दशा की ओर भी कुछ संकेत करते हुये कवि कर्तव्य प्रदर्शित कर रहे हैं श्रेष्ठ कवि! सँयोग शृङ्गार की कवितायें बहुत कर चुके, (वियोग हरि जी के शब्दों में भी "अब नख शिख शृङ्गार में कविगण कछु रस नाहिं" हैं) नायक तथा नायिकाओं को मिला चुके कोमल कल्पनाओं के सुन्दर मृदु गीत अब समाप्त करो प्रेम के उलाहने (शिकवे) गाने का अब समय नहीं रहा। इस समय तो वह जागृति की ध्वनि अलापो जिससे भारतवासी यह समझकर कि मरना तो है ही देश की सेवा में मरकर ही क्यों न अमर हो

जायं, युद्ध के लिये कमर कसकर प्रस्तुत हो जायं। मुचकुन्द की मोह निद्रा = संसार की प्रलय करके भगवान बालमुकुन्द कमल में शयन करते हैं। यह निद्रा अधिक दिनों में टूटती है। इसी प्रकार सदियों से सोये हुये भारतवासियों को आज पर्वतों को भी हिला देने वाले समुद्र को मचला देने वाले सङ्गीत से जगाना है तभी इनकी घोर मोह निद्रा टूटेगी जिसमें अब तक पड़े सो रहे हैं।

पृष्ठ १३५, १३६ शब्दार्थ— मेघ-समारोह = बादलों का समूह। क्षुद्र = तुच्छ। नीहार कनिका। ओस की बूँद। प्रभात = प्रातःकाल। अदृश-लिपि = भाग्य।

लक्ष्मी ... ... है।

भावार्थ—(मनुष्य का जीवन इस संसार में क्षणिक उल्लास है, वह एक क्षण में विकसित होता है। दूसरे क्षणमें खिला जाता है। उसका क्षण स्थायी जीवन प्रकृति इन इन वस्तुओं से तोला जा सकता है) लक्ष्मी की लीला जिस प्रकार स्थायी नहीं होती वह चञ्चला होती है, कमल के पत्ते पर जिस प्रकार जल बिन्दु क्षणमात्र भी नहीं स्थिर होता, आकाश में मेघों का समूह जिस प्रकार कुछ क्षण पश्चात विदीर्ण हो जाता है। यही नहीं इनसे भी शीघ्रतर अगोचर हो जाने वाली प्रातःकाल की ओस की बूंदों की भाँति जो प्रभात के साथ साथ ही विलीन हो जाती हैं, मनुष्यका जीवन अस्थिर है। मनुष्य का भाग्य इस प्रकार परिवर्तित होता रहता है तथा अज्ञात रहता है जैसे काले बादलों में अग्नि की रेखाओं से लिखी हुई सी तड़ित माला तनिक झलक कर छिप जाती है। इतने अज्ञात भाग्य तथा अस्थिर जीवन वाला मनुष्य भावी घटनाओं का सेवक होता है, आगामी घट-

नाओं पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। अधिकार भी किस प्रकार हो भविष्य के स्वर्ण प्रसादों को पूर्ण करने के पूर्व भी वह किसी भी समय मृत्यु से छीन लिया जाता है। बेचारा केवल भूतकाल की घटनाओं का स्वामी होता है।

वसुन्धरा=पृथ्वी। वसुन्धरा का शृङ्गार=पृथ्वी की शोभा बढ़ाने वाला। वीरताका वर्णीय बन्धु=वीरताभी जिसको वर्णन करनाचाहती थी वह बन्धुवर्मा=भग्न=टूटेहुये। पोत=जहाज

पृष्ठ १३७—कनिष्क चैत्य=महाराज कनिष्क की प्रतिमा।

पृष्ठ १३८—समाधि=शरीर की सुधबुध खोकर ब्रह्मरन्ध्र में प्राण ले जाकर ब्रह्म में ध्यान लगाना। चेतना=ज्ञान। बट पत्र शायी=बटवृक्ष के पत्ते में (सृष्टि के अन्त में) सोने वाले अर्थात भगवान। श्रमजीव=श्रम से जीवन व्यतीत करने वाले सेवा वृत्ति वाले अर्थात शूद्र।

बौद्धो ... ...तुच्छ है।

भावार्थ— बौद्ध जिस प्रकार मोक्ष से सन्तुष्ट रहते हैं, योगी जिस प्रकार समाधिमें मग्न रहते हैं। पागल मनुष्य जिस प्रकार किसी बात को स्मरण नहीं रखता, उसी प्रकार मे इन सब बातों को एक साथ चाहता हूँ। मेरी ज्ञान शक्ति मुझे बतलाती है कि मैं एक राजा हूँ। परन्तु कोई आकर चुपके से कह जाता है कि तू केवल खिलौना मात्र है। सृष्टि के प्रलय करने वाले, (क्षण मात्र में राज्य से च्युत कर देने वाले) भगवान के हाथों का तू क्रीड़ा कन्दुक है। तेरा मुकुट मलेच्छों की टोकरी से भी तुच्छ है।

शब्दार्थ-करुणा सहचर=दयाको साथ रखनेवाले दयावान। अमाघ=अमर, अपार। वैभव=धन। स्वत्व=अधिकार।

वैभव ... ... है।

भावार्थ— मनुष्य धन पाकर मत्त हो जाता है। ईश्वर को वह भूल जाता है। सुखमें उसे किसी दैवी शक्ति से प्रार्थना करने

की क्या पड़ी है। किन्तु ज्यों ज्यों उसका ऐश्वर्य घटता जाता है त्यों २ वह ईश्वर को स्मरण करता जाता है। इसी कारण कबीर ने कहा है:— दुःख में सुमरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमरण करें तो दुख काहे को होय॥

तुलसीदास जी ने कहा है :—

"ऐसा को जन्मा जगमाँहीं, प्रभुता पाई जाहि मद नाहीं"।

श्रीमद वक्र न कीन केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृग नैनी के नैन सर, को अस लागि न जाहि॥

यह ... ... था।

भावार्थ— यह विपत्तियां मुझ पर ही आने को थीं।

मन बहलाने ... ... रही।

भावार्थ— क्यों कि स्कन्दगुप्त का विजया के प्रति प्रेम भी रिक्त ही रहा इस कारण सारे ही मनोविनोद नष्ट हो गये।

शब्दार्थ— संतरण=पार करना। अनन्त-सागर=असँख्य विपत्तियाँ।

पृष्ठ १३९—भीति=भय। सत=सत्य। चेतना=ज्ञान। दिग्दाह=दिशाओं को जलाना। वधिर=बहरा। अन्तर्वेद=अन्दर का किला।

पृष्ठ १४०- विहारस्थली=विहार करने का स्थान। शृगाल-वृन्द=गिदड़ों का समूह। अकर्मण्य=आलसी। निस्प्रय=कांति-रहित।

पृष्ठ १४१— स्वानुभूति को जागृत करो=अपनी शक्ति को समझो, विचारो तुममें कितनी सामर्थ्य है तुम क्या क्या कर सकते हो। अनिवार्य=न रुकने वाले, अबाधित। पदाघात=की ठोकर।

जो ... ... है।

भावार्थ— जो मनुष्य सारे कर्मों को ईश्वर के अर्पण कर देता है अपने को केवल निमितमात्र मानकर कार्य करता है वह ईश्वर का अवतार है।

Note:— 'Acticn is thy duty, reward is not thy concern'

के अनुसार मनुष्य को ईश्वर पूर्ण विश्वास रखकर कार्य करना चाहिये अवश्य सफलता प्राप्त होती हैं। जो सफलता प्राप्त करता रहता है किसी भी कार्य में नीचा नहीं देखता उसके ईश्वर अथवा सर्व सामर्थ्यवान होने में क्या सन्देह है।

पृष्ठ १४२—समाधि=मरनेके स्थानपर बना हुआ स्मारक, कब्र, (Grave) धरोहर=रक्खा हुआ धन (गिरवी रखना), सौंपा हुआ धन। यहाँ देवसेना से अभिप्राय है क्योंकि बंधुवर्मा ने स्कन्द को राज्य सौंपते समय देवसेना की रक्षा का भार भी दे दिया था।

कोई ... ... थी।

भावार्थ— शत्रुओं से (प्रपञ्च बुद्धि आदि से घिरी हुई) देव सेना रक्षा के लिये चिल्लाती है। स्कन्दगुप्त चारों ओर खोज करता है कि शब्द कहां से आया। वह वाणी पहचान कर यह निश्चय करता है कि देवसेना जैसा शब्द है।

पञ्चम अङ्क

पृष्ठ १४३ शब्दार्थ — रंक = कङ्काल । दुर्वृत्त दानव = कठोर राक्षस । स्नेह-संवलित = स्नेह से युक्त ।

राजा ... ... तिरस्कार ।

भावार्थ—भाग्यचक्र मनुष्य को नचाता रहता है । जो आज राजा है वह कल भिकारी है, जो आज उच्चपद पर है कल वही नीचे गिर जाता है । उन्नति तथा अवनति दोनों संसार रूपी रथ के पहिये हैं । परिवर्तनशील जगत में मनुष्य भी बदलता रहता है कहीं तो वह कठोर राक्षसीय आचरण कर बैठता है तथा अन्य स्थान पर स्नेह से युक्त मनुष्य को भांति कार्य करता है । कभी तो समृद्धि पूर्ण अवस्थामें उसकी हृदयतन्त्री में हर्ष की गूंज उठती रहती है । कहीं वह निर्धनता के कारण पग पर ठोकर खाता है ।

शब्दार्थ— वीरगति को प्राप्त हुये=स्वर्ग सिधार गये । देवकुलिक=देवताओं के वंश वाला । विक्षिप्त=तित्तर बित्तर । अभिनय=नाटक प्रदर्शन ।

सन्धि—प्रकाशादित्य=प्रकाश+आदित्य=प्रकाश का सूर्य मोने के हैं=वास्तविक जीवित सच्चे सिंह नहीं ।

पृष्ठ १४४—अभिसार=प्रेमिका का प्रेमी से मिलने जाना । छोकरियाँ=लड़कियां । अभिचार=पाप, व्यभिचार ।

नोटः— जहां यज्ञ, विवाह आदि शुभ कार्य अच्छे मुहूर्त्त में किये जाते थे वहां अब बुरे कार्यों को आरम्भ करने के लिये मुहूर्त्त विचरवाते हैं।

अवकाश = समय (फुरसत)।

क्या ... ... है।

भावार्थ— कार्य पड़ने पर तो 'गदहे को भी बाप बनाना पड़ता है' यदि स्वार्थ वश मनुष्य, मनुष्य से सम्बन्ध स्थापित करे तो फिर मनुष्यता ही क्या रही? संसार में यही देखने में आता है कि काम पड़ने पर ही मनुष्य दूसरों से प्रार्थना करता है।

अखण्ड वेग = प्रबल चञ्चलता।

जिस ... ... संबंध।

भावार्थ— जिस मनुष्य के हृदयमें शान्ति नहीं, जिसका मन अस्थिर हो इधरउधर भटकता रहता है जो सदैव किसी न किसी बात के लिये लालायित रहता है, जिसकी इच्छायें कभी पूर्ण नहीं होतीं, जो दूसरों की कृपा का आभारी नहीं रहता जो कठोर बना रहता है, जो अपना कार्य पूर्ण करने के लिये अच्छा बुरा सब कुछ कर सकता है वह कदापि मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।

पृष्ठ १४५— वही ... ... था।

भावार्थ—मुदगल द्वारा कथित 'एक दिन' जो गत हो चुका अपने गर्भ में भविष्य में होने वाले दृश्य को छिपाये था।

स्वार्थ ... ... पड़ी।

भावार्थ—स्कन्दगुप्त को वरण करने की आशा को नष्ट होते देख प्रेम को ठुकराया जान, भटार्क से भी हाथ धो मैंने शीघ्र ही देशसेवा द्वारा परमार्थ करने का मार्ग ग्रहण करने की ठान ली।

प्रतिहिंसा = प्रतिशोध लेने की इच्छा। रत्नगृह = रत्नों का

ढेर। सङ्कलन=एकत्रित, संगठित।

पृष्ठ १४६— अदृश्य=भाग्य।

अदृश्य ... ...परमार्थ।

भावार्थ— भाग्य ने बड़ी अनुकूलतासे अभीतक मेरे रत्नगृह की रक्षा की है क्यों कि मैं उसके द्वारा फिर से स्कन्दगुप्त की सहायता कर और उसे अपना वर बना कर मगध की सम्राज्ञी बन सकती हूँ। इससे मेरा स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों बातें बनी रहेंगी। स्कन्दगुप्त के पति हो जाने से स्वार्थ सिद्ध होगा तथा देश हित सेना सङ्कलन में धन देना परमार्थ भी होगा।

अपने ... ... है।

भावार्थ— दुष्कर्म करने का फल मनुष्य को खोटा मिलता है उसे नाना प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ती हैं। किन्तु उसका अन्तिम फल बड़ा मिष्ट होता है क्यों कि मनुष्य को भविष्य में बुरे कर्म करने से चेतावनी हो जाती है। यह जान पड़ता है कि अमुक कार्य का अमुक फल होता है।

नोट—फल तथा परिणाम में एक अर्थ होने पर भी कुछ अन्तर रहता है। फल किसी बात के नतीजे को कहते हैं। परिणामका अर्थ अन्तिम फल है। यदि एक Positive degree है तो दूसरा Superlative अङ्गरेजी में हम फल को (Result) और परिणाम को (Final Result) कह सकते हैं।

जिस ... ... होगी।

भावार्थ—काली सर्पिणीके समान विषैली राज्यनीति तुम्हारे प्राणों को भी सन्देह में डाल देगी। प्राणों के मूल्य पर तुम उस नीति को अपनाओ। एक क्षुद्र नारी=अनन्त देवी की ओर संकेत क्यों कि वही भटार्क को महा बलाधिकृत बनाने के लोभ से कुचक्र विद्रोह में फाँस चुकी थी।

पृष्ठ १४७— कुत्सित=घृणित । संचय=एकत्र करना । अक्षय निधि=अपार धनराशि । सृष्टि में=विचारों में । दुर्दशा ग्रस्त=विपत्ति में पड़े हुये । आपद्धर्म=आपत्ति काल का धर्म "आपत्ति काले मर्यादा नास्ति" विपत्ति के समय मर्यादा नहीं रहती , उस समय पाप करना पड़ता है ।

पृष्ठ १४८— जिस देश ... ... धज ।

Reference— यहाँ आधुनिक छैल छबीले नवयुवकों की ओर छींटा है जो दास होते भी फैशन के सेवक बने हुये हैं दासता को तुड़ाने का प्रयत्न नहीं करते ।

थाती=धरोहर । पुष्कल=अतुल ।

विलास ... ... नहीं ।

भावार्थ— आधुनिक रईस विलासिता में धन बहा देते हैं । परन्तु दीन दुखियों की सहायता के नाम कानों पर हाथ धर जाते हैं ।

पृष्ठ १४९ शब्दार्थ— सङ्गीत-सभा=सङ्गीत में इकत्रित मनुष्यों का समूह (Music conference) म्लान सौरभ=मुर्झाई हुई गन्ध । अवसाद=थकान, क्लेश । प्रकृति=छाया ।

सङ्गीत ... ... है ।

भावार्थ— जिस प्रकार सङ्गीत सभा में गवैया गान समाप्त करते समय अन्त में तान तोड़ते समय एक लहरदार स्वर भर कर पवनमें गूंजता छोड़ देता है तथा गायन समाप्त हो जाने पर भी मनुष्यों के कर्णो में ध्वनि गूंजती रह जाती है ऐसा प्रतीत हुआ करता है कि अब भी गाना हो रहा है तथा जिस प्रकार सुगन्धित पदार्थ अगर धूप आदि की बत्ती जलाने पर एक धीमी सी पतली धुएं की रेखा उठा करती है और जिस प्रकार पुष्पों का चूर्ण कर देने पर उनमें से कुछ मन्द सुगन्ध उड़ती रह जाती है । वास्तविक सुगन्ध नष्ट हो जाती है और जिस भाँति विवाह

आदि उत्सवों के पश्चात अधिक कार्य करने के कारण क्लेश तथा थकान हुआ करती है। (रति सुख के पश्चात मनुष्य का सारा शरीर थक जाता है और बड़ी मीठी निद्रा आती है) ।उसी प्रकार मेरा जीवन अब भी इन सब उपमाओं की छाया मात्र रह गया है। ठीक वैसी ही दशा मेरी भी है। मेरा पहला सौंदर्य चहल पहल, चञ्चलता, दूसरों को वशीभूत रखना तथा ऐश्वर्य आदि सब नष्ट हो चुके हैं। अब मैं पूर्व की अवस्था का अवशेष रह गई हूं। मुझे जीवन में केवल एक वस्तु प्रिय रही है. वह है मेरा मधुर प्रिय गान! किन्तु गाकर सुनाने को भी कुछ न रह गया है प्राचीन गीतों में अब दूसरों को लुभाने की शक्ति न रह गई हो, अथवा अब वह आकृष्ट करने को क्षमता नहीं रखते तो यह बात नहीं है, मुझे इस गीत में वार बार आनन्द आता है। मैं उसे सुनना तथा जीवन पर्यन्त गाना चाहती हूँ। यही अभिलाषा सजग हो जाती है।

शब्दार्थ— राका=पूर्णिमा। रस निधि=रस का समुद्र। मुक्तामयी=मोतियों से युक्त। स्वाती=नक्षत्र।

शून्य ... ... तुझ में।

भावार्थ— शून्याकाश में पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा निराश हुआ किसका मधुर प्रकाश खोज रहा है। हे हृदय! तुझमें ऐसी कौनसी वस्तु छिपी है जिसे तू खोजता फिर रहा है। जब मेरी कोई भी बात तुझ से छिपी हुई नहीं है तब भला तू किस वस्तु को लेने के लिये मचलता है। यद्यपि सीपी समुद्रमें डूबी रहती है किन्तु उसकी तृषा फिर भी नहीं मिटती, वह मोती धारण करने वाली स्वाती नक्षत्र के जल की आशा लगाये रहती है। हे हृदय तू समुद्र बना हुआ है तुझमें लहरें उठ रहीं हैं। तुझे अब कौनसा ऐसा नया रत्न मिल गया है जो पहले से तुझमें न था।

पृष्ठ १५०— परिस्कृत=स्वच्छ। अपने काम का बनाया था =हृदयश्वरी बनाने का विचार किया।

उऋण=मुक्त, ऋण रहित। रत्न=योद्धा।

पृष्ठ १५१— ममत्व=स्नेह। उत्सर्ग=त्याग। प्रतिदान =बदला।

मालव ... ... करूँगी।

भावार्थ—मेरे भाई बन्धुवर्माने जो मालव देशका सिंहासन त्याग कर तुम्हें अर्पित कर दिया उसके बदले में मैं तुम्हें वर कर तथा फिर उसी राज्य की सम्राज्ञी बनकर अपने मृत बन्धु बन्धु वर्मा की आत्मा का अनादर न करूंगी।

प्रतिदान=एक बार किसी वस्तु का एक को दान करके फिर उसी का दूसरे को दान करना। प्राप्य=प्राप्त वस्तु। एक बार कह दो=एक बार हृदय से मुझे अपना लो।

पृष्ठ १५२ शब्दार्थ— अकर्मण्य=आलसी। निष्काम= बिना फल की इच्छा किये। उसी की=स्कन्द की मूर्ति की। उपासना=पूजा। कामना=इच्छा, कामेच्छा पति रूपमें चाहना, कलुषित=मैला।

अभिमानी ... ... चाहिये।

भावार्थ—जिस प्रकार अपने इष्टदेव पर गौरव से इठलाने वाला भक्त अपने आराध्य देव की पूजा बिना किसी फल की प्राप्ति के करता है, उसी प्रकार हे स्कन्द! मैं तुम्हारी प्रेम प्रतिमा की पूजा बिना तुम्हें वरण करने की इच्छा से करूंगी। यद्यपि मैं तुम्हें हृदय में स्थान दूंगी, किन्तु शुद्ध पवित्र भाव से, उसमें कामनाकी गन्ध भी न आने दूंगी। यदि पति रूपमें वरण करने की इच्छा से मैंने तुम्हारी पूजा की तो मेरा मन वासना चक्कर में फंसकर मेरी सात्विक भक्ति को कलङ्कित कर देगा नाथ! मैं सब प्रकार तुम्हारी हूँ, वैसे मैं अपना हृदय तुम्हें सम-

र्पित कर चुकी हूं किन्तु उसके बदले तुम्हारा हृदय लेना नहीं चाहती। अपना हृदय तुम्हारे चरणों पर चढ़ाकर तुम्हारा हृदय अपना बनाना नहीं चाहती।

नोटः— पति, पत्नी सम्बन्ध तभी स्थापित होता है जब दोनों स्त्री, पुरुष अपने हृदय एक दूसरे को सौंप दें तथा दोनों उन्हें अपना लें। प्रेम दोनों ओर लगी हुई सम अग्नि से होता है। प्रेमाग्नि दोनों ओर एकसी प्रज्ज्वलित होनी चाहिये।

निष्कण्टक=बाधा रहित। देवव्रत=देवताओं की भांति कठिन व्रत करने वाला।

देवव्रत भीष्मपितामह को कहते हैं, क्योंकि उन्होंने आजन्म अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूपेण मनसा वाचा कर्मणा पालन किया। कामदेव को जीतना मनुष्य की शक्तिसे बाहर है। बड़े २ योगीश्वर तथा तपस्वी भी काम के प्रबल वेग को न रोक सके। स्वयं देवता भी काम के वशीभूत होते हैं। इस प्रकार के कठोर व्रत का प्रण करने तथा निभाने वाले किसी भी व्यक्ति को देवव्रत कहा जा सकता है।

शब्दार्थ— शोणित=रक्त। इन्दीवर=कमल।

जैसे ... ... विकास।

भावार्थ —सरस्वती के जल का वर्ण स्वाभाविक रीति से ही लाल होता है फिर उसमें रक्त कमलों का विकसित होना और भी रक्तिमा को बल देता है। रक्तपात में ममता तथा मोह भी लाल वर्ण के मिल जाते है।

नोटः— ममता तथा मोह का रंग लाल माना जाता है।

तुम्हारे ... ... हैं।

पृष्ठ १५३ भावार्थ— मेरे हृदय की आशायें तुम्हारे लिये अभी तक नहीं मुर्झाई हैं अर्थात मैं हृदय से तुम्हें वरण करना अब भी चाहती हू।

Phrase उस खेल को खेलनेकी इच्छा नहीं=विवाह करने की इच्छा मैं छोड़ बैठा हूं। आराधना=पूजा। प्रवञ्चना=छलना ठगना।

तुम से ... ... हूँ।

भावार्थ—स्कन्दगुप्त पहले ही विजया के प्रेम की अस्थिरता देख चुका है। वह पहले उसे प्रेम करने के पश्चात भटार्क पर मन लगा चुकी थी। फिर अब तो वैसे भी स्कन्द आजन्म कौमार व्रत की शपथ ले चुका था। इसी कारण विजया को उसने इतना रूखा उत्तर दिया।

पृष्ठ १५४ शब्दार्थ— उत्कोच=घूस (रिश्वत) Bribe क्रीत =क्रय किया हुआ। वितृष्णा=घृणा। व्यस्त=दुःखा। विश्व-नियन्ता=ईश्वर। अमाव=अचूक।

परन्तु ... ... समृच्छ हैं।

भावार्थ— जगत किसी न किसी उद्देश्य से रचा गया है। मनुष्य संसार में उन्नति करने के हेतु भेजा गया है। उसे चाहिये कि देव तुल्य अपना आचरण बनाकर इसी भूतल को स्वर्ग बना दे। ईश्वर ने इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जगत की रचना की है। अतएव स्वय भी देवता बनकर, देवोपम आचरण बना कर मैं क्यों न उस परंब्रह्म को प्रसन्न करूं, जिनका मैं एक अचूक

अस्त्र हूँ मैं उसी दैव शक्ति के केवल संकेत मात्र की बाट देख रहा हूं। तुरन्त अत्याचारियों का विध्वंस कर दूंगा। मेरी निजी शत्रुता किसी भी प्राणी से नहीं है क्यों कि मैं स्वयं निरेच्छ हूँ। मैं तो ईश्वर के हाथों की कठपुतली, वह जिधर चाहे मुझे घुमा सकता है। उसी की प्रेरणा से मैं प्रत्येक कार्य करूँगा। समस्त देश में फैले हुये इस विद्रोह में कोई निहित शक्ति अपना कार्य कर रही है। उसके विरुद्ध स्वयँ प्रकृति भी अपने नियमों द्वारा अपनी रक्षा करने को कटिबद्ध है।

नोटः— प्रकृति का नियम सत्य की विजय तथा असत्य की पराजय है। जैसा कि संस्कृत में कथन है— "सत्यमेव जयति नानृतं" अर्थात सत्य की ही जय होती है, झूंठ की नहीं।

यह ... ... है।

भावार्थ— मैं मज्जागत लज्जा तजकर भी सर्वस्व तुम्हें अर्पण करने को प्रस्तुत हूँ।

पृष्ठ १५५ शब्दार्थ—तिरोहित=छिपना, अदृश्य हो जाना। तीव्र आलोक=उज्ज्वल प्रकाश। विलीन=छिपना।

उन्मुक्त ... ... हो जाय।

भावार्थ— जिस प्रकार दो सौदामिनियों (तड़ित) स्वतंत्र आकाश में नीले वर्ण के पयोधरों के मध्य में एक बार चमक कर फिर उसी में छिप जाती है, उसी प्रकार हम दोनों भी विलास करते हुये स्वतन्त्रता पूर्वक क्रीड़ा मे मग्न होकर संसार के नेत्रों से छिप जांय। हमारे बिनोद के समुज्ज्वल प्रकाश में कुछ क्षणों तक हम अज्ञात रहेंगे तथा संसार के नेत्र चकाचौंध के कारण इस दृश्य को न देख सकेंगे। उनके नेत्र मुंद जावेंगे। अन्य

संसारकी स्त्रियाँ जो अपनेको अप्सरा समझती हैं तथा वह मनुष्य जो अपने को अपूर्व सुख का भाजन समझते हैं। हमारे विनोद को देख कर आश्चर्यान्वित हो जायेंगे। उसी मदमत्त बना देने वाले सर्वोच्च प्रशस्त सुख को भी आज हम पारस्परिक आलिङ्गन से क्यों न सुखित कर दें, अर्थात हमारे मिलन का मधुर सुख इतना अपूर्व अतुलित तथा अद्वितीय होगा कि स्वयं सुख भी उससे सुखित हो जायगा।

शब्दार्थ— अगरु धूम = काले चन्दन का धुआं। अलक = केशों के गुच्छे। आर्द्र = सरस। वरुनी = पलक। प्रलोभन = लोभ। सुलालित = सुन्दर। आकुल = व्याकुल। निष्ठुर आघात = कठोर आक्रमण। अनुपात = समान सम्बन्ध (Ratio)। अनुनय = प्रार्थना। लाँछित = कलङ्कित।

अगरु ... ... पाओ

अन्वय भावार्थ—अगरु धूम की श्याम लहरियाँ इन अलकों में उलझी हो, मादकता लाली के डोरे इधर पलकों से फँसे हों, तुम आर्द्र हृदय घनमाला से व्याकुल बिजली सी मचलो, आँसू वरुनी से उलझे हों, अधर प्रेम का प्याला सा हो, इस उदास मन की अभिलाषा प्रलोभन से अटकी रहे, व्याकुलता सौ सौ बल खाकर जीवन से उलझ रही हो, छवि प्रकाश किरणें जीवन के भविष्यतम से उलझी हो ये सुलालित रङ्ग लायेंगी सम से कम्पन होने दो। इस आकुल जीवन की घड़ियां इन निष्ठुर आघातों से, अगणित यन्त्रों से, सुख दुख के अनुपातों से बजा करें, उखड़ी साँसें धड़कन से कुछ परिमित हो उलझ रही हों, अनुनय तीखे तिरस्कार से लाँछित हो उलझ रहा हो, यह दुर्बल दीनता उलझी रहे फिर चाहे इन निर्दयता के चरणों से ठुकरा दो जिससे तुम भी सुख पाओ।

भावार्थ—सुगन्धित काले चन्दन के प्रज्वलित होने से उससे उठा हुआ धुआं केशों की लटों में उलझा हुआ हो। मदमस्तता के कारण रक्त नेत्रों के डोरे पलकों से बातें करते हों। मेरे प्रेम से पिघले हुये हृदय रूपी मेघ पंक्ति से आलिङ्गित तुम व्याकुल तड़ित की भाँति चंचला सी चपल हो चमकना। तुम्हारे आँसू पलकों से उलझे हुये हों। प्रेम लोभ के कारण मेरे उदास मन की अभिलाषायें तुम में उलझी ही रहें। मेरी व्याकुलता भी सौं सौ बल खाकर तुम्हारे जीवन से संयुक्त हो जाय। सुन्दरता की प्रकाश रूपी किरणें भविष्य में होने वाले अन्धकार से सम्बद्ध हो। विषय वासना का आनन्द अन्त में दुखदाई होता है। दोनों ओर सामान रूप से आनन्द का कम्पन होने पर वे अपना सुनहला रङ्ग भी लावेंगी। इस व्याकुल जीवन के क्षण कठोर आक्रमणों के कारण असंख्य यन्त्रों समान सुख दुःख से ध्वनित हुआ करे अर्थात एक का सुख दुख दूसरे को समान रूप से सुखित वा दुखित बना दे। हृदय की धड़कन से सीमित हो कर उखडी हुई स्वासें कुछ मात्र में ही उलझी रह जांय। कामातुर की याचनाएं तीव्र तिरस्कार पर भी दूषित होने की चिन्ता न करें। मेरी दुर्बल दीनता की विनय तुम्हारे चरणों से निर्दयतापूर्वक ठुकराये जाने पर भी बनी रहे। तुम प्रत्येक अवस्था में सुखित रहो (यही अभिलाषा है)।

पृष्ठ १५६— कौमार व्रत=अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा। idiom=हिंस पशु एकादशी का व्रत करेगा।

अर्थ— कुटिल मनुष्य से सरलता की आशा रखना व्यर्थ है कभी पड़ेगी=दुष्टा से शुभ कार्य नहीं होता।

जिसमे ... ... था।

भावार्थ—'विजया तूने उस स्कन्दगुप्तके प्रति अपराध किया जिसके ऊपर अत्याचार करनेके कारण स्वयं मै भी लज्जित हूं।

मैं उस स्कन्दगुप्त से क्षमा की प्रार्थना करने के लिये स्वतः वहाँ आया था।

शव का संस्कार करो=मृत शरीर का दाह करो।

पृष्ठ १५७—वानप्रस्थ आश्रम=संसार से विरक्त हो बन चला जाना इसमें स्त्री को भी साथ रख सकते हैं किन्तु बीच में दण्ड रखकर सोते हैं जिसमें अङ्ग स्पर्श न हो। जीवन में चार आश्रम होते हैं—

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यस्थ।

पृष्ठ १५८—देश··· ··· ··· ··· विचारोगे।

अर्थ—देश की इतनी बिगड़ी दशा देखकर भी हे भगवान् क्याडूबते भारतवासियों को पार न लगाओगे? हम अपना सर्वस्व हार चुके हैं। अब कुछ भी समीप न रह गया है। अतएव अब अपने शरीर को भी दाव पर लगा दो। देश हित प्राणों की भी बलि देने को सन्नद्ध हो जाओ। कुछ कर्तव्य भी करोगे या सदैव रो रोकर दीनता के साथ भाग्य को ही पुकारते रहोगे। तुम्हारा भाग्य नहीं सो रहा है बल्कि तुम स्वयं निष्कर्मण्य हो रहे हो। अपनी बुरी गई बीती दशा को तुम स्वयं ही सुधार सकते हो। तुम इस समय तक दीनताका जीवन व्यतीत करते आये होकभी इस पर भी विचार किया कि तुम क्या से क्या हुये जारहे हो—

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी॥

नोट—देश की आधुनिक दशा की ओर सँकेत है।

पृष्ठ १५९—उत्सर्ग=त्याग। प्रस्तुत=तत्पर।

पृष्ठ १६०—उत्कोच=घूंस।

पृष्ठ १६१ अनार्य्य=अनादरसूचक सम्बोधन। मद्यपान= मदिरा पीना। मुंडित मस्तक=संयासी। क्योंकि वह मस्तक मुंडा

हुआ रखते हैं। प्रख्यात कीर्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रवञ्चना =छलना, ठगना। अनात्म=आत्मा न रखने वाले। भव= संसार। प्रस्तुत=तत्पर। रुधिर=रक्त। ज्वाला=अग्नि। अव-हेलना=तिरस्कार। स्कन्धावार=सेना के रहने की छावनी।

पृष्ठ १६२,१६३ शब्दार्थ— उपहार=भेंट। उषा=प्रातःकालीन देवी। अभिनन्दन=स्वागत। हीरक-हार=हीरों का हार। आलोक=प्रकाश। व्योमतम पुंज=आकाश के अंधकार का समूह। संसृति=संसार। अशोक=शोकरहित। विमल वाणी= शुद्धा सरस्वती। कमल-कोमल कर=कमल के समान कोमल वाणी। सप्रीत=प्रेम सहित। सप्त स्वर=सा रे गा मा पा धा नि सा। अरुण-केतन=लाल पताका। अभीत=निर्भय। पुरन्दर=इन्द्र। पर्व=वज्र। लोहे की=तलवार। पूत=पवित्र विपन्न=दुखी।

हिमालय ... ... भारतवर्ष।

भावार्थ—सबसे पहले हिमालय पर्वत के आँगन में सूर्य रश्मियों की भेंट उपस्थित कर प्रातःकाल की देवी, उषा ने उस भारतवर्ष का हँसकर स्वागत किया और उसे विविध किरणों का हीरों के सदृश हार भी पहनाया। उस समय हमारी भी निद्रा टूटी तथा हम संसार को जगाकर फिरसे उसमें प्रकाश फैला हुवा देखने लगे। उस समय आकाश का अंधकार समूह नष्ट होगया था तथा समस्त संसार शोकरहित होगया। शुद्ध स्वरूपासरस्वती ने अपनी वीणा कमल समान कोमल हाथों में प्रेम सहित उठाई अर्थात् विद्या का प्रचार हुआ सातों समुद्र (दधि उदधि आदि) सा रे गा मा पा धि ना सा इन सात स्वरों से गुंजारित हो उठे। उस समय सामवेद की ध्वनि भी गुंजारित हुई। बीज-रूप से संसार की रक्षा करके (आदिम अवस्था में) तथा नाव पर प्रलयकाल का सा जाड़ा सहन करके, लाल ध्वजा अपने हाथ में

लेकर हम जलमार्ग में निर्भय होकर बढ़े। हमने राजा दधीचि का वह त्याग सुना है जो हमारी जातीयता का विकास करने वाला है, हमारे इस अस्थि-युग का (जब दधीचि ने इन्द्र को जीते जी शरीर से हड्डी निकाल कर दान दे दी थी) इतिहास इन्द्र ने अपने शस्त्र बज्र से लिखा है (क्योंकि उसका कुलिश जो दधीचि की हड्डी से बना उसके त्याग का साक्षी है)। समुद्र की भांति फैला हुआ और उसी की भांति अगाध एक देश से निकाले हुये का साहस युक्त वह मार्ग अब भी टूटी फूटी दशा में समुद्र में डूबा हुआ दृष्टिगोचर होता है। (बौद्धमत समुद्र पार करके देशों में भी बुद्ध के प्रवर्त्तकों ने जाकर प्रसारित किया) देश छोड़, मार्ग की विपत्तियां सहकर भी उन्होंने यह सब किया बुद्ध ने उन बलियों को बन्द कर दिया जो धर्म के नाम पर दी जाती थीं। हम ही ने सँसार को शान्ति की शिक्षा दी तथा सर्वत्र आनन्द देखकर सुखी हुये। केवल तलवार आदि लोहे के बने हथियारों ही की विजय नहीं होती सत्य धर्म की ही सदैव विजय होती है। यहाँ के (बुद्ध जैसे) राजा सम्राट होकर भी भिक्षुक की दशा में रहते थे। घर घर घूमकर दया दिखलाते रहे उन्होंने यवनों को दया का दान दिया, चीन को धर्म की दृष्टि दी (बौद्धधर्म चीन में भी फैला) भारत की स्वर्ण भूमि को एक रत्न मिला। सिंहल जैसे प्रायद्वीप में भी शील की उत्पत्ति हुई। भारत को अन्य देशों से लूटमार करने की आवश्यकता न पड़ी बल्कि उलटा भारत ही दूसरे देशों का पालन करता रहा क्योंकि प्रकृति का यह पालना बना रहा अर्थात् सारे खनिज, उपज पदार्थ प्रचुर मात्रा में यहां होते रहे। हमारी जन्मभूमि भारतवर्ष है। हम किसी अन्य देश से यहां नहीं चले आये हैं। जातियों की उन्नति अवनति तो आँधी की भाँति है चढ़ी और उतर गई एक प्रकार

की प्रबल वायु है। हमने अपने उत्थान पतन को अपने नेत्रों से खड़े होकर देखा पतन को हसते २ सहा। हम वीरों का पालन भी प्रलय समान सङ्कट अवस्था में हुआ। हमारा आचरण पवित्र था, हमारी भुजा में शक्ति थी, हम सदैव नम्रता से युक्त रहे। हमारे हृदय में गौरव था गर्व था। "जिसके न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है") हम किसी को भी खिन्न न देख सके। हम यदि धन एकत्रित करते थे तो उसको दान करना भी हमें आता था (कंजूस की भाँति जोड़२ कर ही नहीं रखते रहे) हम अभ्यागतों का देवताओं का सम्मान करते थे हमारे वचन में सत्यता थी हृदयमें तेज था। हम अपनी प्रतिज्ञा को अन्त समय तक पालन करते थे। अब भी हमारा वही रक्त है, देश भी वही है, साहस भी पूर्व सा ही है, ज्ञान भी वैसा ही है, शाँति भी वही है, सामर्थ्य भी वैसी ही है, हम वही देदीप्यमान भारत की सन्तान हैं। यदि हम जीवित रहेंगे तो भारतवर्ष के लिये। सदैव हमारे हृदय में यही अभिमान बना रहे। यह विचार हमारे हृदय में हर्ष के भाव भरें। हम अपने प्रिय देश भारत पर अपना सब कुछ वार दें।

शब्दार्थ— समवेत=एक स्वर से (with one voice)। प्रहार=आक्रमण।

पृष्ठ १६४—क्षम्य=क्षमा करने योग्य। प्रलोभन=लोभ। दुष्कर्म=पाप। प्रवृत हुई=लगी। कुत्सित=घृणित, बुरे, नीच। क्षत-जर्जर=वरणों से छिदा हुआ। भावी=भविष्य में होने वाली। शिरोधार्य=स्वीकार।

पृष्ठ १६३—हृदय ... ... हूँ।
भावार्थ—देवसेना पहले स्कंद की प्रेमयाचना को अस्वीकार

कर चुकी है, किन्तु मनुष्य का हृदय बड़ा चञ्चल होता है। दूसरे वह स्वयं भी स्कन्द को प्रेम करती थी किन्तु प्रेम मोल लेने के विचार से उसने स्कन्द को वरण करने का विचार त्याग दिया था। आज सहसा स्कन्दगुप्त का विचार मन में आ जाने पर देवसेना अपने विचारों को दबाती है। अपनी कल्पना को शान्त होने का आदेश देकर वह कहती है कि मैंने स्वयं प्रेमकी याचना करने वाले स्कन्दगुप्त को कोरा उत्तर पकड़ा दिया। अतएव अब उससे सम्बन्धकी कोई आशा दिखाई नहीं पड़ती। अतः जिसका प्राप्त होना असम्भव हो उस वस्तु के लिये परिश्रम करना व्यर्थ है। मै आज अपने जीवन के भविष्य में होने वाले सुख आशा तथा अभिलाषा सब से विदाई लेती हूँ।

आह ! ... ... कमाई।

भावार्थ— शोक ! वेदने ! आज मैं सब से विदाई लेती हूँ। अब तक मैंने सन्देह में पड़कर अपने जीवन की एकत्रित की हुई पेट की समग्रियों की भीख लुटा दी अर्थात कोई भी याचक मेरे द्वार से रोटी लिये बिना न गया (मैं प्रत्येक की सहायता करने को तत्पर रही)। संध्या समय परिश्रम की बूंदें झलकती थीं। हर घड़ी नेत्रों से अश्रुपात होता था। मेरी जीवन यात्रा पर निःशब्दता भी असंख्य अङ्गड़ाइयाँ लेती थीं। मूकता भी मूक हो जाती थी। थककर सोते हुये स्वप्न की सुन्दर माया में घोर बन के वृक्षों की छाया में नींदके झोंकों के समय हे पथिक किसने प्रातःकाल के गीत की यह तान गाई। मुझ पर सब की दृष्टि बड़ी इच्छाओं के साथ लगी हुई थी। मैं उस सबको बहुत समय तक बचाती रही किन्तु आह ! बावली आशा तूने यह सब कुछ गवां दिया। सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी।

पृष्ठ १६६— बढ़ कर ... ... गँवाई।

भावार्थ— मेरे जीवन रूपी रथ पर आरूढ़ होकर प्रलय

अपने मार्ग पर चल रही है। मैंने अपने दुर्बल चरणों के बल पर उससे हारने वाली होड़ लगाई अर्थात यह जानते हुये भी कि मैं हार जाऊंगी मैंने शर्त लगा ली। यह अपनी धरोहर (हृदय) लौटा ली मेरी करुणा को भी इसपर करुणा आती है। हे संसार मुझमें इसके संभालने की सामर्थ्य नहीं है। क्यों कि इसने लज्जा त्याग दी है।

प्रतिशोध=चुकाना। अवसाद=खिन्नता।

एक दूसरे का मुंह देखकर=प्रेम पूर्वक।

जीवन ... ... कहूं।

भावार्थ—अपनी आयु के अविशिष्ट दोनों को नाना प्रकार के क्लेशों से थकित हुये हम परस्पर दर्शन लाभ से प्रेम पूर्वक व्यतीत कर देंगे। शत्रुओं के आतङ्क को रोकने के लिये हमारे हृदय ने हमें उत्तेजित किया कि शस्त्र लेकर शत्रुओं का अथवा मार्ग रोकने वालों का कठोरतापूर्वक रक्त बहा दे। किन्तु इससब पाषाण हृदयता का लक्ष्य पृथ्वी को स्वर्ग बनाना था अर्थात हमारा अन्तिम ध्येय यह था कि मनुष्य दयावान, सत्यवादी बने देवोपम चरित्र द्वारा सृष्टि का शासन हो। किन्तु उसी की फल स्वरूप तादृशी चरित्र वाली इस नन्दन बन की बसन्त शोभा की सदृश्यता रखने वाली अर्थात देव कानन में जिस प्रकार बसन्त की छबि सुशोभित होती है इसी प्रकार तुम इस भूतल की शोभा बढ़ा रही हो। तुम इस इन्द्रपुरी की इन्द्राणी की भाँति हो। तुम इस पृथ्वी रूपी स्वग की लक्ष्मी हो। ऐसे अनुपम गुणों वाली को मैं किस प्रकार जाने की आज्ञा दे दूं हृदय पर वज्र रख कर किस तुम्हें विदा दे दूं।

पृष्ठ १६७ शब्दार्थ— हतभाग्य=अभागा।

कष्ट ... ... क्षमा।

भावार्थ—मनुष्य के हृदय की वास्तविकपरख विपत्ति पड़ने

पर होती है । (स्वर्ण वही खरा है जो अग्नि में तपाने पर खरा निकले । तपस्या रूपी अग्नि में पड़कर ही मनुष्य, मनुष्य बनता है स्कन्दगुप्त यदि तुम कष्ट सहन नहीं कर सकते तो तुम कैसे वीर हो ? संसार के सुख तो नश्वर हैं क्षणमात्र तक रहने वाले हैं । सुखों के नष्ट हो जाने पर मनुष्य को खेद होता है । अतएव मनुष्य को चाहिये कि सुखों से दूर रहे । जब सुख तथा ऐश्वर्य ही न होगा तब अन्त ही किसका होगा । स्कन्दगुप्त तुम मेरे इस जीवन के आराध्य देवता हो। मैं हृदय से तुम्हारी आराधना करती हूँ । मरने के पश्चात भी मैं दूसरे जन्ममें तुम्हें प्राप्त करूंगी । हृदय में तुम्हारी मूर्ति लेकर मरूंगी जिससे उस जन्म में भी तुम्हें प्राप्त करुं (मरते समय मनुष्य जैसा ध्यान करता है वही हो जाता है) ।

QUESTIONS AND ANSWERS.
ON
पात्रों का चरित्र चित्रण"

Q. I, Delimate the full Phase of the character of Skanda Gupta, the hero of the drama. How can you defend his indifference towards the Kingdom? Is it difficult to understand him ? How ?

Ans. नाटक से नायक स्कन्दगुप्त का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल तथा जाज्वल्यमान है। प्रसाद जी की लेखनी का कौशल अपूर्व रूप में प्रगट हुआ है। स्कन्दगुप्त कुल का भूषण है। नाटक के आरम्भ में हमारा सब से पहले इसी वीर शिरोमणि से परिचय होता है। हम आरम्भ में उसे एक वैराग्य पूर्ण स्वगतोक्ति कथन करते देखते हैं। अधिकार सुख को वह मादक और सारहीन समझता है। स्कन्दगुप्त स्वयँ नियामक बनकर बलवती स्पृहा में पड़कर अकाण्ड ताण्डव नृत्य करना नहीं चाहता। उसकी दृष्टि में राजा का स्थान उत्सवों में परिचारक तथा युद्धके अवसर पर ढाल से उत्कृष्ट नहीं है। फल स्वरूप हम स्कन्दगुप्त को, मगध के युवराज को भावी राज्याधिकार के प्रति उदासीन पाते हैं। पर्णदत्त इस विचार को पुष्ट करते हुये स्कन्दगुप्त से स्पष्ट कह देता है "अपने अधिकारों के प्रति आपकी उदासीनता" इस उदासीनता का परिपक्व स्वरूप हमारे सम्मुख अधिकारों को व्यर्थ समझनेवाले स्कन्दगुप्तके निम्न शब्दोंके द्वारा आता है अभी

तो आप हैं, तब भी हमी सब विचारों का बोझ वहन करें. वह भी किस लिये" ? पर्णदत्त इस पर उसे फिर स्मरण दिलाता है— "इसी लिये मैंने कहा था कि आप अपने अधिकारों के प्रति उदासीन हैं" गुप्त साम्राज्य का भावी शासक स्कन्दगुप्त अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं रखता। गुप्तकुल के अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम ने तथा साम्राज्य को गले पड़ी वस्तु समझी जाने के कारण भी स्कन्दगुप्त का मन वैसे राज्य का शासन करने को नहीं चाहता। स्कन्दगुप्त की उदासीनता उसके चरित्र की दुर्बलता को प्रकट नहीं करती। उसकी यह विमुखता एक विशेष अभिप्राय रखती है। इसके मूल में थी 'पृथ्वी को स्वर्ग बना देने की वाच्छा'। स्कन्दगुप्त अब तक की दुर्बल शासन-नीति के विरुद्ध है। वह आदर्श राज्य स्थापित करना चाहता था। जब वह अपने मनोरथ को सिद्ध होता नहीं देखता तो सर्वोच्च कोटि का त्याग कर देता है। वह समस्त वैभव पुरगुप्त के लिये छोड़ देता है।

स्कन्दगुप्त राजनैतिक नियमों से अधिक अपनी आत्मा के सद्विचारों की आज्ञा का पालन करता है। वह शरण में आये हुये की रक्षा करना सन्धि-नियम पालन से भी उत्कृष्ट समझता है। मालव दूत से वह कह देता है—"केवल सन्धि नियम ही से हम बाध्य नहीं हैं किन्तु शरणागत रक्षा भी क्षत्रिय का धर्म है"। "स्कन्द के जीते मालव का कुछ न बिगड़ेगा"।

स्कन्दगुप्त में क्षात्रिय वीरोचित समस्त गुण हैं। सतीत्व के अपमान को वह नहीं सह सकता। विजया देवसेना आदि की रक्षा करता है। अपनी माता देवकी के वद्ध के समय वह अचानक आ उपस्थित होता है। उसके मुख से समयोचित वीरता के शब्द निकलते हैं। मालव दूत भी कह उठता है—"आर्य सम्राज्य के भावी शासक के उपयुक्त ही यह बात है" मालव पर किये गये

बबर हूणों के आक्रमण से विजयी लौटकर वह मगध में फिर वही दृश्य देखता है। स्कन्दगुप्त की बीरता का इतना लोहा माना जाता है कि उसके देखते ही शक और हूण भाग जाते हैं। अबलाओं की रक्षा का उसे ध्यान है। उसकी अनुपस्थिति में रणोद्यत अबलाओं से वह कहता है—

"ठहरो देवियो! स्कन्द के जीवित रहते स्त्रियों को शस्त्र नहीं चलाना पड़ेगा।"

वह विजय को क्षणिक उल्लास समझता है। उसकी दृष्टि में त्याग का महत्व सर्वोत्कृष्ट है। अथवा यों कहिये कि उसके प्रति त्याग का ही दूसरा नाम महत्व है तथा वही वीरता का रहस्य है जो त्यागी नहीं वह वीर कहलाने का अधिकारी कदापि नहीं है।

वीर होने के साथ ही साथ स्कन्दगुप्त उस जीवन को जिसके लिये रात दिन लड़ना पड़े बिडम्बना समझता है। वह मानव जीवन के कुछ और भी उद्देश्य मानता है। यदि एक ओर स्कंद तलवार लेकर रणचण्डी को मुडों की भेंट देकर रिझा सकता है। तो दूसरी ओर वह क्षमा दया तथा त्यागकी गोद में खेलता है। वह वीरता तथा प्रेम दोनोंकी संयुक्त प्रतिमूर्ति है। वह सतीत्व के अपमान, देश की रक्षा तथा मर्य्यादा के पालन के लिये युद्ध में सन्नद्ध होता है राज्य का लोभ उसे ऐसा न करने के लिये वाधित नहीं करता। वह प्राप्त हुये सिंहासन को भी दूसरों के प्रति उत्सर्ग कर सकता है उस तुच्छ वस्तु के लिये मर कटना तो दूर रहा। इसी कारण वह कहता है—

"स्वर्गीय सम्राट कुमारगुप्त का सिंहासन मेरे योग्य नहीं है। मैं झगड़ा करना नहीं चाहता मुझे सिंहासन नहीं चाहिये"।

हम इसको विजया के शब्दों में स्कन्द की 'दुर्बलता' अथवा देवसेना के शब्दों में उसकी 'वेदना' नहीं कह सकते। किन्तु इसके मूल में उसकी त्याग की वृत्ति है। अपनी माता देवकी की हत्या करने के लिये उद्यत भटार्क को वह द्वन्द्व युद्ध में परास्त करता है। अपने विरुद्ध कुचक्र रचने वाली विमाता अनन्त देवी से वह केवल यह कहता है—

"मैं स्त्री पर हाथ नहीं उठाता परन्तु विद्रोह की इच्छा न करना"

उसकी क्षमाशीलता अथवा विमाता के प्रति आदर का भाव दोनों में से कुछ भी कहा जा सकता है। उस आर्य जाति के स्तंभ स्कन्दगुप्त से गोबिन्दगुप्त सिंहासन ग्रहण करने को कहते हैं। किन्तु समय की परिस्थिति को पढ़ने वाला स्कन्द कह देता है—

'तात विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं अन्तर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल सैनिक बन सकूंगा।'

सबके आग्रह से वह मालव का सिंहासन ग्रहण कर लेता है। वह राजा कर्त्तव्यों को समझता है। इसी कारण गोबिन्दगुप्त से यह आशीर्वाद चाहता है कि वह उस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सके। वह आर्य राष्ट्र की सेवा में सर्वस्व अर्पण करने को कटिबद्ध है। हमने कर्तव्य से, स्वदेश सेवा से वह कदापि पराङ्मुख नहीं होता। बन्दी शर्वनाग को वह दण्ड देने के स्थान पर अन्तर्वेद का विषयपति बना देता है। दण्ड देने का पाठ ही उसने नहीं पढ़ा वह तो क्षमा की मूर्ति है। अपनी जन्मदायिनी साम्राज्य लक्ष्मी, महादेवी देवकी की हत्या में सम्मिलित होने वाले अक्षम्य अपराधी भटार्क तक को वह क्षमा प्रदान कर देता है तथा उल्टा महाबलाधिकृत नियत कर देता है इससे उच्च और क्षमा का आदर्श क्या हो सकता है? स्कन्दगुप्त

विजया को गुप्त रूप से प्रेम करता है। अभी अपने प्रेम को उसने स्पष्ट न किया था। वही विजया जब षडयन्त्र में भाग लेने के कारण वन्दिनी होकर उसके सामने आती है तो वह विचार में पड़ जाता है। विजया के भटार्क पर मन लाने की गाथा सुन कर वह सुन्न रह जाता है। केवल इतना कहता है—

"परन्तु विजया! तुमने यह क्या किया?"

किन्तु स्कन्दगुप्त के हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। वह साम्राज्य को बोझ समझने लगता है। उसे चारों ओर अशांति दृष्टिगोचर होती है। अब वह अपने को विश्व भर की शाँति रजनी का धूमकेतु समझने लगता है। स्कन्दगुप्त सब की आँखों की किरकिरी सा होजाता है। यह सब उसकी प्रेम-पथ की नैराश्यता है। वह कुछ खिन्न सा हो जाता है। दूसरी ओर देवसेना भी स्कन्दगुप्त को प्रेम करती है। स्कन्दगुप्त उग्रतारा पर बलि दी जाती हुई देवसेना की रक्षा करता है उस अवसर पर जब वह उसे "मेरे देवता युवराज कहकर स्मरण कर रही थी देवसेना उसे आलिङ्गन कर लेती है।"

चतुर्थ अङ्क में स्कन्दगुप्त की दशा अव्यवस्थित सी हो जाती है। इसका कारण भटार्क के विश्वासघात का प्रभाव भी होसकता है। जिस भटार्क पर स्कंद ने इतना अनुग्रह किया वही हूणों के आक्रमण के समय कुभा का बांध तोड़ देता है। जिससे समस्त देश में जल ही जल हो जाता है। यद्यपि स्कदगुप्त उस समय तो भेद नीति से अपना कार्य निकाल लेता है किन्तु उसे संसार की ओर से विरक्तता सी हो जाती है, भटार्क की कृतघ्नता की उसे स्वप्न में भी आशा न थी। परिणाम यह होता है कि हम उसे एक स्वगतोक्ति में अपने हृदय खोलते हुये पाते हैं। वह अपने को

दैव का खिलौना समझता है। वह करुण प्रार्थना करता हुआ अपने को ईश्वरीय दया पर छोड़ देता है। वह अत्यन्त नैराश्य पूर्ण अवस्था में कहता है— 'यह आर्य साम्राज्य का विनाश इन्हीं आँखों को देखना था ? हृदय काँप उठता है, देशाभिमान गरजने लगता है। मेरा स्वत्व नहो गुप्त साम्राज्य हराभरा रहे ।"

साम्राज्य के प्रति उसका प्रेम किसी अवस्था में भी घटने नहीं पाता।

विजया के प्रेम का अङ्कुर उसे अभी सता रहा है—
'ओह ! जाने दो, गया, सब कुछ गया। मन बहलाने की कोई वस्तु न रही ।"

अब स्कन्द की विषम अवस्था हो जाती है, वह कहता है— 'कर्तव्य विस्मृत, भविष्य अन्धकार पूर्ण। लक्ष्यहीन दौड़ और भविष्य अन्धकार पूर्ण ! अवलम्बन दो, नाथ ? आयवर्त पर आच्छादित काले मेघ देखकर वह घबड़ा जाता है। 'आह ! मैं वही हूँ, अकेला, निस्सहाय' जीवन की भिन्न २ परिस्थिति हमें स्कन्दगुप्त के वास्तविक चरित्र को नहीं प्रकट होने देती, सहसा परिवर्तन हो जाता है। शेक्सपियर के हेमलेट (Hamlet) की भाँति उसका समझना दुसह हो जाता है। इस नैराश्य पूर्ण दशा में भी कमला की उत्तेजना तथा हूणों से पीड़ित देवसेना का आर्तनाद सुनकर वह तुरन्त खँग सम्भालता है माता की मृत्यु का दुःखद समाचार भी उसे निराश कर देता है, वह मूर्छित हो जाता है। उसकी समाधि पर घुटने टेककर वह अभिशापों की क्षमा माँगता है। वह जीवन में प्रेम चाहता था। हम उसे अब देवसेना के प्रेमी के रूप में पाते हैं। वह कहता है— "देवसेना बड़ी बड़ी कामनाएं थीं, कभी हमने भी तुझे अपने काम का

बनाया था। अपना ममत्व तुम्हें देकर उऋण हो जाऊंगा और एकान्तवास करूँगा।" देवसेना भी स्पष्ट उत्तर देती है। "उस समय, आप विजया का स्वप्न देखते थे अब प्रतिदान लेकर मैं महत्व को कलङ्कित न करूंगी।" इसपर वह कौमार व्रत आजीवन के लिये ग्रहण करता है। उस प्रणपर दृढ होकर वह विजया को उसी प्रकार फटकार कर उसके प्रेम को झिड़क देता है जिस प्रकार देवसेना ने उसके इन शब्दों पर भी "एकान्त जीवन व्यतीत करूगा— एक बार कह दो?" अपनी उच्च भावना की उद्भावना को न छोड़ा था। वह कह देता है— 'चुप रहो विजया! तुमसे यदि स्वर्ग भी मिले तो उससे दूर हो रहना चाहता हूँ।" विजया के पैर पकड़ लेने पर वह उसे घुड़क देता है। 'विजया! पिशाची! हट जा, मैंने आजन्म कौमार व्रत की प्रतिज्ञा की है। पर्णदत्त की भिक्षा पर वह फिर सर्व प्रथम अपने को जन्म भूमि के लिये उत्सर्ग कर देता है। खिंगिल को हूण सेना सहित परास्त करता है। पुरगुप्त और अनन्तदेवी बन्दी होते हैं।

किन्तु क्षमाशील स्कन्द दोनों को क्षमा प्रदान कर पुरगुप्त को टीका कर देता है और हूणों को छोड़कर अपनी क्षमा तथा अपने अलौकिक त्याग की अचल अमल कौमुदी स्थापित करता है।

संक्षेप में स्कन्दगुप्त देवकी का सर्वस्व, आनन्द का उत्सव, आशा का सहारा, आर्यवर्त का रत्न, देश का बिना दाम का सेवक, जनसाधारण के हृदय का स्वामी तथा क्षमा वीरता एवं त्याग की प्रति मूर्ति है। गुप्त वँश का सर्वोज्ज्वल नक्षत्र है। उसके सिंहासनस्थ होने से पूर्व ही भीतरी षड़यन्त्र उठ खड़े हुये अत्यन्त विषम अवस्था में भी असंख्य विपत्तियां सहकर जिस लोकोत्तर उत्साह एवँ वीरता से उसने आर्य साम्राज्य की रक्षा

की उसे पढ़ कर मृत-नाड़ी में रक्त संचार हो उठता है। अन्त में साम्राज्य का एक छत्र चक्रवर्त्तित्व मिलने पर भी उसे अपनी षड़यन्त्री विरोधी वैमात्र पुरगुप्त के लिये त्याग देना तथा स्वयं आजन्म कौमारव्रत लेना—हमें उसके अद्भुत चरित्रपर विस्मित एवं मुग्ध बना देते हैं। करुणासागर में हमें निमग्न कर देते हैं यदि इतनी विषय परिस्थितियाँ उपस्थित न होती तो स्कन्दगुप्त का चरित्र हिन्दी नाट्य जगतमें एकही होता। त्यागी कृति, वीर, मृदुभाषी होने के कारण वह धीर प्रशान्त नायक है।

2. 'भटार्क is the most changing character in the Drama of Skanda Gupta Justify the above.

मगध का नवीन महाबलाधिकृत भटार्क हमारे संमुख आरम्भ ही से एक परिवर्तित रूपमें आता है। स्यात् वह आरंभ ही से पुरगुप्त तथा अनन्तदेवी के साथ स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त तथा देवकी के विरुद्ध षड़यन्त्र में सम्मिलित था क्यों कि वह अनन्त देवी को महादेवी का सम्बोधन देता है। उसे इस पर पूर्ण विश्वास भी है, वह कहता है— "हमारा हृदय कह रहा है और आये दिन साम्राज्य की जनता, प्रजा सभी कहेगी" अनेक पराक्रमों द्वारा उसने मगध के महाबलाधिकृत का पद प्राप्त किया है। कुछ व्यङ्ग बाणों के कारण वह विद्रोही बन जाता है। पृथ्वी सेन उसका विरोध करता है किन्तु वह अनन्तदेवी की उस कृपा का जो उसने उसे पद प्राप्त कराने में दी, कृतघ्नी नहीं होता। वह अनन्तदेवी को अपने बाहुबल का विश्वास दिलाता है। वह महादेवी देवकी पर नियन्त्रण कराता है। सम्राट के निधन का उपकरण बनकर उसे गुप्त रखता है। इसका भेद उस समय खुलता है जबवह कुमारामात्य महादण्डनायक और महाप्रतिहार से शस्त्र अर्पण करके पुरगुप्त के अभिवादन की आज्ञा देता है

इन तीन प्रमुख व्यक्तियों की मृत्यु पर वह केवल यह कहता है—"परन्तु भूल हुई ऐसे स्वामी भक्त सेवक।" परन्तु थोड़ी देर के पश्चात ही वह कहने लगता है —

'जायं सब जाय, वीर युवकों का शुद्ध रक्त, मेरी प्रतिहिंसा राक्षसी के लिये बलि !'

प्रपञ्च बुद्धि से मिलकर वह देवकी के हनन का जाल रचता है और सर्वनागको भी फुसला लेता है। इसको यहवृद्धि पुरस्कार और मदिरा का लोभ देता है किन्तु वह सफल न होकर स्कन्द गुप्त द्वारा द्वन्द युद्ध में घायल और बन्दी होता है। उसकी माता कमला उसे देश द्रोहता के कारण धिक्कारती है। किन्तु वह वीर बलिष्ट तथा सुन्दर है। इसकी वीरता तथा सुन्दरता पर विजया मोहित हो जाती है। मात के वचनों पश्चात भी वह गोबिन्दगुप्त पर तलवार निकाल लेता है किन्तु गोविन्दगुप्त द्वारा इसकी तलवार छिन जाती है और वह बन्दी हो जाता है। अब उसको अपने पाप की भीषणता का अनुमान हो जाता है और पाप का फल भोगने के लिये उत्सुक हो जाता है।

मैं कुछ नहीं जानता यह (विजया, कौन है। मुझे भी विलम्ब हो रहा है, शीघ्र न्यायाधिकरण में चलिये इससे प्रगट होता है कि भटाके के हृदय में सत्य का भाग था अवश्य, किन्तु वह पाप के कारण मलीनहो गया था। न्यायालयमें पहुँचकर वह अपराध हुआ कहकर सिर नीचा कर लेता है। स्कन्दगुप्त उसे क्षमा तथा दया के भार से और भी लज्जित कर देता है। किन्तु वह फिर प्रपञ्च बुद्धि द्वारा देवसेना के अन्त करने के प्रपञ्च में फांस लिया जाता है। वह सोचने लगता है—

"परन्तु मैं कृतघ्नता से कलङ्कित होऊंगा और स्कन्द से किस मुँह से..............नहीं नहीं !!" भटार्क कुछ समय के लिये कुकृत्यों से घृणा करने लगता है। उसे अपने पापों का ध्यान है किन्तु वह फिर कुकर्म करने पर बाध्य किया गया।

"ओह ! पाप पङ्क में लिप्त मनुष्य को छुट्टी नहीं ! कुकर्म उसे जकड़कर नागपाश में बाँधे रहते हैं ! दुर्भाग्य"

यह सब होते हुये भी उसमें फिर परिवर्तन होता है। वह फिर इतना नीचे गिर गिर जाता है कि हूण सेनापति खिङ्गिल से मिल जाता है। स्कन्दगुप्त इसका तनिक सा चिह्न पाकर उससे कहता है—

"भटार्क प्रपञ्चना का समय नहीं है। स्मरण रखना, कृतघ्न और नीचों की श्रेणी में तुम्हारा नाम पहले रहेगा !" किन्तु भटार्क फिर भी विश्वासघात करता है। वह कुभा का बाँध तोड़ देता है जिससे समस्त देश में जल ही जल होजाता है। यह सोचकर कि इस जलबेग में स्कन्दगुप्त का अन्त हो जावेगा वह देवकी के स्कन्दगुप्त के पूछे जाने पर कहता है—

"कुभा की क्षुब्ध लहरों से पूछो।"

उसकी माता कमला को इस पर आन्तरिक कष्ट होता है वह उसे दूसरी बार लज्जित करती है। इस पर वह शस्त्र त्याग देता है। अंतिम अङ्क में एक स्वगतोक्ति में हम उसे प्रायश्चित करते पाते हैं। "मेरी उच्च आकांक्षा, वीरता का दम्भ, पाखँड की सीमा तक पहुँच गया। अनन्त देवी, एक क्षुद्र नारी उसके कुचक्र में, आशा के प्रलोभन में मैंने सब बिगाड़ा' वह स्कंदगुप्त से क्षमा याचना करने जाता है। वहां पहुँचकर विजया को स्कन्दगुप्त से प्रणयकी भिक्षा मांगते देखता है। यहां वह उसी स्कंदगुप्त के साथ

विजया को अपराधिनी पाता है जिस पर 'अत्याचार करके भी वह लज्जित है'। यद्यपि वह शस्त्र उठाने की प्रतिज्ञा कर चुका है किन्तु आज आत्महत्या करने के लिये प्रतिज्ञा भङ्ग करके तलवार उठाता है। किन्तु स्कन्दगुप्त के रोक देने पर वह उस तलवार को अब शत्रुओं के लिये सुरक्षित रखता है। घुटने टेक कर वही भटार्क आज उसी स्कन्दगुप्त से कहता है —

"श्री स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य की जय हो"

स्कन्दगुप्त से पुनः पुरगुप्त को सिंहासन दान कर देने पर वह कहता है—

"देवव्रत अभी आपकी छत्र छाया में बहुत सी विजय प्राप्त करनी है"

उक्त शब्द उसी भटार्क के हैं जो आरम्भ से ही "अनन्त देवी के कार्य साधन का अस्त्र तथा पुरगुप्त के ऊंचे सिंहासन की सीढ़ी रहा"।

किन्तु भटार्क के इस अन्तिम परिवर्तन का कुछ विशेष महत्व नहीं। इतना परिवर्तन तो मनुष्य में प्रत्यावर्तन स्वरूप में भी हो जाता है। अतीत के कठोर, कृतघ्न तथा दुराचारपूर्ण उसके कर्म हमारे हृदय में एक घृणा उत्पन्न कर देते है। कमला जैसी देवी भी भटार्क सा नीच पुत्र पाकर अपने को अभागी समझती है। वह वीर सही उसमें वह शक्ति भी थी कि शत्रु उसका लोहा मानते थे किन्तु तलवार पर अधिकार होते हुये भी उसे हृदय पर अधिकार न था। उसने अपनी शक्ति का उचित उपयोग न किया। भटार्क केवल लोलुप, मद्यप कृतघ्नी, देशद्रोही था। अन्त में उसे अपने पापों से इतनी घृणा होगई कि उसने अपने जीवन को दूसरी ओर बहने दिया। वीरता की दृष्टि से हम भटार्क को एक

श्रेष्ठ योद्धा मानते यदि वह आदि से ही देश की रक्षा में अपने शस्त्रों का समुचित प्रयोग करता। चरित्र का उत्थान, पतन नाटकीय पात्रों का एक आवश्यक अंग है। किन्तु भटार्क के चरित्र में पतन अधिक है। वह कई बार प्रतिज्ञा भग्न होकर पाप पङ्क में लिप्त होता है। उससे अधिक परिवर्तनशील पात्र अन्य नहीं है॥

Q3 Show that Parndutta is a foil to Bhatarka.

Ans. पर्णदत्त तथा भटार्क के चरित्र में आकाश, पाताल का अन्तर है। भटार्क जितना लोलुप, मद्यप, कृतघ्नी, देशद्रोही है। पर्णदत्त उतनाही स्वामीभक्त, वीर, त्यागी, पराक्रमी है। दोनों में आकाश, पाताल का अन्तर है। पर्णदत्त का चरित्र आदि से अत तक शुद्ध है, कलङ्क कालिमा उसे स्पर्श तो क्या करती उसकी छाया तक को नहीं छू सकती किन्तु भटार्क का चरित्र लांछन पूर्ण है। वह सुधर कर भी बिगड़ता है, उठकर भी गिर जाता है। पर्णदत्त का रोम रोम देशका सेवी है। भटार्क का प्रत्येक अङ्ग विद्रोह की अग्नि से धधकता है यदि भटार्क वीर है उसका लोहा शत्रुगण मानते हैं तो पर्णदत्तने भी गरुड़ध्वज को फहराकर सर्वत्र अचल कीर्ति स्थापित की। पर्णदत्त मगध का महा नायक है, भटार्क मगधका महाबलाधिकृत है। भटार्क जितना उग्र है पर्णदत्त उतना ही नम्र तथा शील स्वभाव का है। वह स्कन्दगुप्त से कहता है—

"मेरी आज्ञा युवराज मैं तो राज्य का एक सेवक हूँ"।

उसने अपना समस्त जीवन राष्ट्र पर प्राण न्योछावर करके यापन किया तो भटार्क ने देश के विरुद्ध विद्रोह में वृद्ध होते हुये भी गुप्त साम्राज्यके मानके लिये मर मिटनेकी उसकी अभिलाषा है तो भटार्क की रह रहकर कुचक्रमें फंसने की कामना। पर्णदत्त को अपने कर्तव्य का ध्यान है। तथा विरक्त स्कन्दगुप्त को भी

वह अधिकारों का उपयोग करने को उत्साहित करता है। यदि और भी कुछ नहीं तो "त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिये, सतीत्व के अपमान के लिये, शिशुओं को हंसने के लिये" स्कन्दगुप्त को स्वत्वों का प्रयोग करना सिखाता है। भटार्क उसके विरुद्ध पुरगुप्त से मिलकर षडयन्त्र रचता है। वह समझता है कि राजनीति दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है किन्तु प्रत्यक्षवाद की कठोर समस्या है। वह हार्दिक बातों को राजनैतिक भाषा में व्यक्त करना जानता है। यही कारण है कि वह चक्रपालित को इसके विरुद्ध करने से रोकता है। भटार्क पहले से ही भावी राजनैतिक घटनाओं को सिद्ध मान बैठता है। वह आरम्भ ही से अनन्त देवी को राजमाता कहना प्रारम्भ कर देता है।

वृद्ध पर्णदत्त वृद्धावस्था में भी सैना लेकर पुष्य मित्रों के आक्रमण को रोक सकता है। गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी को वह प्रसन्न रख सकता है। भटार्क राजलक्ष्मी के विध्वंस का कारण बनता है।

किन्तु बलिहारी भाग्य चक्र तेरी! राजा से रङ्क, कहीं दानव कहीं मानव, कहीं वीणा की झंकार, कहीं दीनता और तिरस्कार! गुप्तकुल के अव्यवसित उत्तराधिकार नियम तथा राजधानी के नित्य नये परिवर्तनों से पर्णदत्त भी न बच सका देश कुचक्रियोंके जाल तथा विद्रोह से अधोगति को पहुँच गया। पर्णदत्त की दशा देखकर पाषाण भी पिघल उठता है। विपत्तियाँ भी सच्चे पुरुषको ही सताती हैं। प्रसादजी को चाहिए था कि जो दशा पर्णदत्तकी दिखाई है वह भटार्ककी दिखाते जो हृदयको संतोष होता। पर्णदत्त की दीनदशा देखिये'सूखी रोटियों को बचाकर रखना पड़ता है जिन्हें कुत्तों को देते संकोच होता था, उन्हीं कुत्सित अन्नों का संचय! नहीं पर्ण! रोना मत! तुम जीतेहो तुम्हारा उद्देश्य सफल

होगा" प्रसादजी की लेखनी ने यहाँ आवश्यकता से अधिक उस वीर अग्रगण्य सच्चे देश प्रेमी स्वामी भक्त पर्णदत्त पर दैन्य की वर्षा कर दी जिसके साथ २ पाठकों के नेत्रों से भी अश्रुपात होता है। आज मगध का महानायक जोगी का स्वांग भरे फिरता है। विलासप्रिय नागरिक कुछ देनेसे पूर्व उसके साथ की छोकरी देवसेना का गाना सुनने की इच्छा प्रकट करते हैं। पर्णदत्त की नसें फड़क उठती हैं, उसका रक्त खौल उठता। वह तुरन्त वीरोचित फटकार से काम लेता है—

"नीच, दुरात्मा विलास का नारकीय कीड़ा। बालों को सँवार करअच्छे कपड़े पहनकर अभी शानसे निकलता है। जिस देश के युवक ऐसे हों उसे अवश्य दूसरों के हाथ चला जाना चाहिये।"

यह वीरों की भिक्षा भी वह अपने लिये नहीं किन्तु स्कन्द जैसे दुर्दशा ग्रस्त वीरों की सेवा लिये मांगता है। सैनिक वीरों को भूख से तड़पते देख उसके नेत्रों से रक्त टपकने लगता है। देवसेना द्वारा पर्णदत्त की यह अवस्था सुनकर स्कन्दगुप्त भी कह उठता है। "वृद्ध पर्णदत्त, सच्चे स्वामी भक्त पर्णदत्त! तात!! तुम्हारी यह दशा!!! जिसके लोहे से आग बरसती थी वह जंगल की लकड़ियाँ बटोर कर आग सुलगाता है।"

उसको भीख में क्या चाहिये "जन्म भूमि के हेतु उत्सर्ग कर देने वाले प्राण।"

सब से पहले स्कन्दगुप्त अपने को अर्पितकर देता है। अन्त में हम उस गरुड़ध्वज लेकर आय चन्द्रगुप्त की सेना संचालन करने वाले को साम्राज्य के मान के लिये प्राणों की आहुति देते देखते हैं। जिस वीर की वीरता की लेखमाला शिप्रा तथा सिन्धु की लोल लहरियों से लिखी जाती जाती थी। आज उसी वीर।

की वीरता को सींचने के लिये पाठकों के आँसुओं की धारा उमड़ चलती है। पर्णदत्त का चरित्र सर्वोज्ज्वल है। शांतिप्रदान करने वाली बात यही है कि जन्म पर्यन्त गरुड़ध्वज की छाया में लड़ने वाला वीर अन्त में भी गरुड़ध्वज की छाया में लिटाया गया धन्य वीर आर्य पर्णदत्त !

Q. 4 Show that the tragic events in the drama 'Skanda Gupta' are due to the weakness of Kumar Gupta, the ruler.

Ans. मगध के सम्राट कुमारगुप्त का दर्शन हमें कुसुमपुर के राजमन्दिर में धतुसेन से हास्य तथा विनोद का वार्तालाप करते हुये होता है। जिस देश पर चारों ओर से आक्रमण हो रहे हों, जिस देश का युवराज तथा वृद्ध महानायक भावी युद्ध की चिन्ता में ग्रस्त हो उस देश का सम्राट युद्ध का प्रसङ्ग भी नहीं चलाता। वह राजदण्ड हिला देने से ही गुप्त साम्राज्य का सञ्चालन करना चाहता है। वह हँस कर धातुसेन से तुम्हारी लङ्का में अब राक्षस नहीं रहते ?" इस प्रकार का प्रश्न करता है। युद्ध को वह सिर पड़ी वस्तु समझता है तथा राज्य को गले पड़ी वस्तु जानता है—

"युद्ध तो करना ही पड़ता है अपनी सत्ता बना रखने के लिये आवश्यक है।

धातुसेन कुमार गुप्त पर स्त्री की मन्त्रणा के अनुकूल चलकर राज्य के झञ्झटों से शीघ्र छुट्टी मिल जाने का व्यंग करता है। पृथ्वीसेन जब उसे मालवेश के दूत के आने का तथा युद्ध का समाचार देता है तो कुमारगुप्त केवल इतना कहकर चुप हो जाते

है—"मालव का इस अभिमानसे कैसा भाव है, कुछ पता चला! क्यों कि यह युद्ध जान बूझकर छेड़ा गया है।"

वह सदैव विलासिता में मग्न रहता है—

"आज तो पारसीक नर्त्तकियाँ आने वाली हैं, अपानक भी है महादेवी से कह देना असन्तुष्ट न हो, कल चलूंगा।

जिस देश पर इतनी आपत्तियां हों उसके सम्राट की यह दशा है। परिणाम यह होता है कि अनन्तदेवी पुरगुप्त, भटार्क आदि षड़यन्त्र रचकर उसको नियन्त्रित करके वध कर देते हैं और पुरगुप्त को मगधका राजाधिराज नियतकर देते हैं गुप्तकुल में राज्याधिराजकी व्यवस्था टूट जाती है। उसी शोकमें महाप्रतिहार दण्डनायक तथा कुमारामात्य पृथ्वीसेन तीनों आत्महत्या कर लेते हैं। अन्त में महादेवी देवकी की जीवन लीला भी समाप्त हो जाती है। मगध पर नाना प्रकार की विपत्तियों के मेघ छा जाते हैं। राज्य के अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम, कुमारगुप्त की विलासिता तथा साम्राज्य को गले पड़ी वस्तु समझने के कारण ही सारी विपत्तियाँ जाती हैं।

Q. 5 Govind gupta's character is far superior than that of Kumar gupta.

Ans. कुमारगुप्त के अनुज गोविन्दगुप्त का दर्शन हमें हूणों के अत्याचार करते समय होता है। गोविन्दगुप्त वीर पुङ्गव हैं। उनका दर्शन करते ही मुद्गल महाराज पुत्र गोविन्दगुप्त की जय बोलता है और समस्त मगध के सैनिक अत्याचारियों के सम्मुख वीरता से जुट जाते हैं, उनमें पूर्ण उत्साह भर जाते हैं। समस्त हूण सैनिक भागते ही दिखाई पड़ते हैं। गोविन्दगुप्त को

दशा भी शोकग्रस्त रहती है। कुमारगुप्त की विलासिता तथा देश की विपत्तियों को देखकर भी वह चिन्तित रहते हैं। उनकी एक मात्र आशा उनका प्रिय स्कन्द है। वह उसकी कुशलता की कामना करते हैं।

'वीर पुत्र है। स्कन्द ! आकाश के देवता और पृथ्वी की लक्ष्मी तुम्हारी रक्षा करें। आर्य साम्रज्य के तुम्हीं एक मात्र भरोसा हो'। कुचक्र भटार्क उन्हें देखकर तलवार निकल लेता है वह उसकी तलवार छीनकर उसे बन्दी बनाते हैं। गोविंदगुप्त वास्तविक वीर है। उन्हें ज्ञात है कि वीरता किसे कहते हैं? वह भटार्क को भी वीरता के साथ न्याय का उपदेश देते हैं।

"कृतघ्न ! वीरता उन्माद नहीं है, आँधी नहीं है, जो उचित अनुचित का विचार न करती हो। केवल शस्त्र बल पर टिकी हुई वीरता बिना पैर की है उसकी दृढ़ भित्ती है न्याय।"

स्कन्दगुप्त उनका उचित सम्मान करता है। देखते ही चरण वन्दना करता है। कुमारगुप्त का इतना आदर उसने कभी नहीं किया। वह गोबिन्द को ही पिता समझता है— "तात! कहाँ थे? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहां छिपे थे"? गोविन्दगुप्त कुमारगुप्त के लक्षणों को न सह सकने के कारण राज्य से दूर सन्यस्थ वेशमें चले जाते हैं। केवल स्कन्द के कारण आते हैं- "गुप्तकुल तिलक ! भाई से मैं रूठ गया था, परन्तु तुम से कभी नहीं, तुम मेरी आत्मा हो वत्स"। (स्कन्द के प्रति) गोविंदगुप्त को स्कन्दपर गौरव है जिसे वह अपनी भाबी देवकी से इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

"महादेवी ! तुम्हारी कोख से पैदा हुआ यह रत्न, गुप्तकुल के अभिमान का चिह्न, सदैव यशभिमण्डित रहेगा।"

स्कन्दगुप्त को मालव पर सिंहासनस्थ होने के लिये अपनी ओजस्वनी वाणी से वही तत्पर करते हैं। देशकी पूर्ण परिस्थिति उन्हें ज्ञात रहती है। वह नवीन साम्राज्य के महाबलाधिकृत बनाये जाते हैं। उनका चरित्र कुमारगुप्त से कहीं उत्कृष्टतर है। वह शक मंडल के युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं।

Q. 6 Show that चक्रपालित is the worthy son of the worthy Father.

Ans अलौकिक अद्भुत तथा अद्वितीय चरित्र वाले मगध के महानायक पर्णदत्त का पुत्र चक्रपालित भी एक आदर्श उज्वल चरित्र का नवयुवक वीर है। पर्णदत्त के पुत्र में जिन वीरोचित गुणों का होना आवश्यक है वह सब चक्रपालितमें पाये जाते हैं। वह बालक होने पर भी देश में चलने वाली प्रत्येक वायु की दिशा को जानता है। वह इतनी अनुभवी तथा दूर की बातें कहता है कि जो उसकी अवस्था वाले युवक से आशा नहीं की जाती। स्कन्दगुप्त के उदासीन रहने का कारण वह स्पष्टरूप से 'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम'! कह डालता है। उसमें इतनी उत्तेजना तथा स्फूर्ति है कि इस स्पष्टता के लिए पर्णदत्त उसे गंभीरतासे समझाता है'असावधान बालक! अपनी चंचलता को विष वृक्ष का बीज न बना देना'। वह जोश के कारण हृदय की बातों को राजनैतिक भाषामें व्यक्त नहीं कर सकता। वल्लभी के समाचार तथा पुष्पमित्रों के युद्ध का वह पूर्ण विवरण ज्ञात रखता है। स्वयं युवराज के साथ युद्ध में जाने का आग्रह करता है वह समस्त संसार को वीरों की चित्रशाला मानता है। वीरत्व को स्वावलम्बी गुण जानता है। नवयुवक चक्रपालित दिन रात "युद्धस्व विगतज्वरः" का शङ्खनाद सुना करता है। उसे युद्ध से

प्रियतर और कोई भी वस्तु नहीं दिखाई देती, वह स्कन्दगुप्त को भी उत्तेजित करता है। सबकी रक्षाके लिये उसे अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने का आदेश देता है। वह जानता है कि राज्य-शक्ति के केन्द्र में अन्याय होने पर समग्र राष्ट्र अन्यायों का क्रीड़ा-स्थल हो जावेगा। कुभा के घात के समय वह स्कन्दगुप्त को भटार्क को बन्दी बनाने की सम्मति देता है। उसे बालक समझने वाले भटार्क से वह क्रोध में कह देता है—

'दुराचारी कृतघ्न ! अभी तेरा कलेजा फाड़ खाता तेरा...'। स्कन्दगुप्त उसे भोला बनाकर झगड़ा समाप्त करा देता है। चक्र हूणों का आक्रमण रोकने चला जाता है। वह मनुष्य के जीवन को क्षणभंगुर तथा उसे भविष्यका अनुचर एवं अतीत कास्वामी मानता है। सारे परिवर्तनों को वह अदृष्ट-लिपि की लीला समझता है। अपने पूज्य पिता पर्णदत्त के सेना एकत्रित करने के समय अपने को सबके साथ प्रस्तुत कर देता है। वास्तव में वह पर्णदत्त का सच्चा रक्त तथा उसी की प्रतिमूर्ति है।

Q. 7. 'Sharvanag' was a slave to wife, wind and wealth." Justify the statement.

Ans कादम्ब कामिनी और कांचन इन तीनों ककारों की चोट शर्वनाग की चेतना भुला देती है। वास्तव में पहले उसका चरित्र पवित्र था। पहले अङ्क में हम उसे अंतःपुर के द्वार पर टहलता पाते हैं। वह अपने विचारों में मग्न है। मनुष्य एकान्त में ही अपने चिर हृदयस्थित भावोंको प्रकट करता है। स्वगतोक्ति में शर्वनाग कहता है—

"मैं सदैव इसी सुन्दरी खड्गलता पर मोहित रहा।"
उसका भय से परिचय तक नहीं है। इतना निर्भय होते हुये

वह केवल अपनी स्त्री की भर्त्सनाओं के अक्षय भण्डार से डरता है। महादेवी देवकी पर भटार्क से नियन्त्रण रखने की आज्ञा पाकर वह चौंक पड़ता है। वह 'क्रोध से गरजते सिंह की पूछ उखाड़ सकता है, परन्तु अपनी स्त्री रामा को देखकर उसके देवता कूच कर जाते हैं। धन और मान पदवी के लोभ से वह पुरगुप्त की पहली ही झिड़की में शिर झुका देता है और दबे पाँव महादेवी के द्वार पर चला जाता है। 'विश्वास करना और देना' ही वह सँसार की कुञ्जी समझता है। वह बड़ा पूरा तार्किक भी है। पाप-पङ्क में लिप्त प्रपञ्च बुद्धि को वह कोरी कोरी सुनाता है।

'तभी आप चौंकते हैं, और धर्म की रक्षा करेंगे, हत्या के द्वारा हत्या का निषेध कर लेंगे।'

वह 'भूखे भेड़िये की भाँति शत्रु का रक्तपान' कर सकता है। किन्तु निरीह हत्या करने को तत्पर नहीं। पहले वह बड़े उच्च आदर्श विचार प्रकट करता है। 'लाभ ही के लिये कार्य करना वह पशु तुल्य समझता है"। यदि उसमें कोई अवगुण है तो मदिरा पान। मद्यप होने के कारण ही उसका पतन होता है। जहाँ एक प्याले ने उसके हृदय तक लकीर खींची कि वह कर्मपथ से विचलित हुआ। मदिरा के गुलाबी नशे में वह अपनी स्त्रीको "स्वर्ग की अप्सरा या स्वप्न की चुड़ैल समझता है"। नारि-चरित्र का उसे अच्छा ज्ञान है, रति शास्त्र का वह ज्ञाता है। वह अपनी स्त्री से कहता है—सुन्दरी ! यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम लोगोंका वेष विन्यास. आंखों की लुका चोरी, अङ्गों का सिमटना, चलने में एक क्रीड़ा, एक कौतुहल, पुकार कर, टोककर कहते हैं—हमें देखो—हम क्या करें— देखते ही बनता है"।

वास्तव में जितना ऐसी युवती को देखते ही बनता है उतना ही शर्वनाग की उस उक्ति को देखते ही बनता है। वह रामा को रानी बनाने, उसे स्वर्ण से ढकने तथा उसके अभावों के कोष को पूरा करने के लिये महादेवी की हत्या में सहायक होता है। मनुष्योचित हृदय को कोड़ी के मोल बेच देने पर उसकी स्त्री रामा उसे डाटती है। अपने पति किन्तु अब पिशाच रक्त पिपासु के विरुद्ध हो जाती है। परन्तु स्वर्ण और मान प्राप्त करनेके लिये शर्वनाग विघ्नों के पहाड़ों को भी हटा सकता है। रामा की भी हत्या करने को उद्यत हो जाता है किन्तु स्कन्दगुप्त उसको बन्दी बना लेता है। इसपर वह अपने दुष्चरित्र पर ग्लानि प्रकट करने लगता है। उसके चरित्र की सरिता सरल होते हुये भी नतोन्नत तथा कुमार्ग भूमि के आ जाने के कारण वक्रगति से प्रवाहित लगी थी किन्तु आघात पाकर पुनः पवित्र सरिणा बन जाती है। न्यायालय में पहुंचकर वह कहता है—

"सम्राट मुझे वध की आज्ञा दीजिये, ऐसे नीच के लिये और कोई दण्ड नहीं। मुझे वध की आज्ञा दीजिये, नहीं तो आत्म-हत्या करूँगा।"

संकल्प या प्रवृत्ति हो जाने पर पाप से बचने वालों के लिये सात्विक वृत्ति वालों के लिये ग्लानि, राजसी वृत्ति वालों के लिए लज्जा और तामसी वृत्ति वालों के लिये भय है। स्कन्द द्वारा मुक्त किये जाने पर भी वध की आज्ञा के लिये आग्रह करना ग्लानि में ही परिगणित होगा। अतएव शर्वनाग हृदय से शुद्ध था उसमें मनुष्यता थी, किन्तु 'को न कुसँगति पाय नसाई' के अनुसार वह कुचक्रियों के फन्दे में फसकर अपने को कामिनी, कादम्बिनी तथा काँचन का दास बना लेता है। हिन्दी के तीन कवग तथा

अङ्गरेजी को तीन ow's का वह दास बनजाता है। अन्त में वह देवकी के चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करता है।

'मां मुझे क्षमा करो, मैं मनुष्य से पशु हो गया था। अब सम्राट की दयासे मैं मनुष्य हुआ" प्रसादजी के समस्त पात्रों में शर्वनाग के चरित्र में बड़ा ही सुन्दर उत्थान पतन प्रदर्शित किया गया है। प्रवृत्तियों के उत्थान पतन का अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

Q. 8 "Matra Gupta the poet is the author's creation to display some of his poetic ideas" Bring out the idea with reference to Matra Gupta's character.

Ans. प्रसाद जी जिस उत्कृष्ट कोटि के नाटककार हैं उसी कोटि के वह कवि भी है। वह छायावादी कवि हैं। छायावादी कविता की भाषा की ओट में भाव कुछ खोया हुआ सा रहता है। कवि होते हुये उन्हें एक पात्र की कल्पना करना आवश्यक सा प्रतीत हुआ। इसी कारण मातृगुप्त की सृष्टि हुई। नाटक के कथानक से मातृगुप्त का सम्बन्ध उतना नहीं है जितना कि कविता पूर्ण उक्तियों के प्रतिपादन से। यदि मातृगुप्त को निकाल दिया जाय तो भी नाटक का परिणाम वैसा ही दिखाया जा सकता है। जिन घटनाओं को निकाल देने पर भी वैसाही परिणाम रहे वह इति वृत्त का आवश्यक अङ्ग नहीं होता।

हमारा मातृगुप्त से प्रथम परिचय पथ में 'कविता' तथा कवि जीवन की समालोचना करते हुये होता है। उसके विचार से 'कविता करना अनन्त पुण्य का फल है'। प्रसाद जी स्वय एक उच्च तथा धनिक वंश में उत्पन्न हुये हैं। उन्हें धन संबंधी चिंता कभी नहीं करनी पड़ी। वास्तव में स्वतन्त्रता पूर्वक शांति के कोने में बैठ कर वही भाग्यवान कविता कर सकता है जो

जीवन की चिंताओंसे दूर हो। इसी कारण मातृगुप्त कवित्व होने पर भी धन के अभाव को कोसता है। यदि वह लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों का लाडला होता तो सोने में सुगन्ध हो जाती। मातृगुप्त 'संसार के समस्त अभावों को असन्तोष कहकर हृदय को धोखा देता रहा'। कविता का मूल्य नहीं लगाना चाहिये। वह स्वान्तःसुखाय' होनी चाहिये। यदि कवि को कविता पर पुरस्कार पाने की इच्छा से लक्ष्मी के लालों की सेवा में उनके द्वार पर भटकना पड़ता है तो उसे भ्रूभङ्ग तथा क्षोभ की ज्वाला के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त न होगा कवि का काल्पनिक जीवन दूसरों की दया पर अवलम्बित रहना नहीं चाहता। कवि के हृदय कोष में सँचित उदार भाव रूपी अमूल्य रत्नों का पारखी संसार में विरला ही होता है। यदि इतने पर भी उसे दारिद्रय का व्यङ्गात्मक कठोर अट्टहाससहन करना पड़े तो उसका जीवन विडम्बना मात्र रह जाता है। कविता मातृगुप्त के भूखे हृदय का आहार है। नाटककार अपने पात्रों के द्वारा ही अपने विचार प्रकट करता है (a poet speaks through his characters) प्रसाद जी मातृगुप्त के मुख से स्वयं कविता की परिभाषा करते हैं—

'कवित्व वर्णमय चित्र है, स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अन्धकार का आलोक से, असत का सत से, जड़ का चेतन से और बाह्य जगत का अन्तर्जगत से सम्बन्ध स्थापित कराती है" आधुनिक समय में कविता शास्त्र तथा संस्कृत विद्या का आदर नहीं है। इसी की ओर संकेत करके प्रसाद जी ने मातृगुप्त की इतनी दीन दशा प्रदर्शित की है। "बड़े लोगों की एक दृढ़धारणा होती है अभी टकराने दो ऐसे बहुत आया जाया करते हैं।"

मातृगुप्त आजीविका के हेतु अपनी उस जन्मभूमि

काश्मीर को त्यागता है। जिसकी धूलि में लोकर वह पोषित हुआ। उसके जीवन का मनोहर स्वप्न टूट जाता है। उसकी स्त्री प्रणयिनी) भी उसे त्याग देती है. मातृगुप्त की कवित्वमय भाषा कहीं कहीं तो नितांत छायावादी ढङ्ग की है—

'अमृत के सरोवर में कमल खिल रहा था, भ्रमर वन्शी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल पहल थी।'

अपनी प्रणयिनी की स्मृति वह ऐसे गुम्फित शब्दों में देता है जहां स्पष्टता नष्ट हो जाती है—

"उस समय हिमालय के ऊपर प्रभाव सूर्य की सुनहरी प्रभा से आलोकित बर्फ का पीले पोखराज का सा, एक महल था। उसी से नवनीत की पुतली झाँककर विश्व को देखती थी। हिम की शीतलता से सुसङ्गठित थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तप्त होकर महल को गला दिया। पुतली! उसका मङ्गल हो, हमारे अश्रु की शीतलता उसे सुरक्षित रक्खे। कल्पना की भाषा के पङ्ख गिर जाते हैं, मान-नीड़ में निवास करने दो, छेड़ो मत'। इस पर मातृगुप्त, कुमारगुप्त से सुकवि तथा विद्वान होने की उपाधि पाता है। स्यात कुमारदास ने इस भाव को खूब समझा हो! उसकी सारी बातें क्लिष्ट होती हैं। इन गुत्थियों को सुलझाना कठिन है। देखिये— 'यदि यह विश्व इन्द्रजाल है तो उस इन्द्रजाली की अनन्त इच्छा को पूर्ण करने का साधन— यह मधु मोह चिरजीवी हो और अभिलाषा से मचलने वाले भूखे हृदय को आहार मिले।'

जिस प्रकार प्रसादजी की 'कोमल कल्पना वाणी की वीणामें झनकार उत्पन्न कर सकती है, उसी प्रकार मातृगुप्त की भी। मातृगुप्त अपने जीवन के प्रचंड आतपमें सुन्दर स्नेह को अपनी

छाया बनाना चाहता है। इन कवित्वमय विचारों को कुछ समय के लिये बन्द करके नाटकीय घटनाओं की ओर वह केवल इतना संकेत करता है—

"निस्संदेह ! अनन्तदेवी के इशारे पर कुमारगुप्त नाच रहे हैं"। दूसरी बार भी वह हमें मुद्गल के साथ पथमें ही मिलता है। यहां विनोदपूर्ण वार्तालाप में भी विद्वत्ता प्रदर्शित करता है। गीता के 'तत्वेवाहं जातु नाऽसौ नत्वंनेयं' तथा सूच्यग्र भाग के लिये दूध और मधु से बना हुआ एक रक्त भी गिराऊं मैं सूच्यग्र मेव न दास्यामि युद्धं बिना' के भाव से उसकी बहुज्ञता प्रगट होती है। शक और हूणों से अत्याचार से भारतियों की दशा पर उसे दया आती है। निरीह प्रजा का नाश वह नहीं देख सकता। वह अपने कवि कर्त्तव्य को पूरा करनेके लिये तुरन्त ही 'उतारोगे अब कब भूभार' वाले गीत की अवतारणा करता है। कवि होकर वह लेखनी चलाने में जितना कुशल है उतना ही तलवार चलाने में भी हूणों की स्त्रियों के पकड़ लेने पर तलवार लेकर 'निरीहों के लिये प्राण उत्सर्ग करना धर्म समझता है तथा स्त्रियों के बन्धन काट देता है। वह स्कन्दगुप्त का अनुचर है। गोविंदगुप्त को पुष्पमित्रों के युद्ध में विजय की सूचना देता है। उन्हीं की आज्ञा से भटार्क और विजया को बन्दी बनाता है। वह भटार्क की कुमन्त्रणाओं पर दृष्टि रखता है। देवसेना का अन्त करने के लिये उसे कुचक्र में फंसते देख वह उस कुसुम कली को बचाने के लिये उस छली, कपटी, विश्वासघाती तथा कृतघ्नी को रोकने का प्रयास करता है।

चतुर्थ अङ्क में वह देवसेना की रक्षाके उपलक्षमें स्कन्द द्वारा बनाये काश्मीर के राजा के रूप में आता है। उसका परिचय

उसकी स्त्री मालिनी से होता है। अवगुण्ठन हटाने पर वह उसे पहचान लेता है। किन्तु विलास ने उसके मुख पर मलीन छाया डालदी थी। वह आज तक उसकी मूर्तिकी हृदय मन्दिर में पूजा करता था। किन्तु आज उसी मालिन ने सोने के लिये 'नदन' का आम्लान कुसुम बेंच डाला। अतएव मूर्ति धुंधली होजाती है। वह अब काश्मीर से विदा ले लेता है अत्यन्त निराश हो जाता है। वह भी कवित्वमय भाषा में। 'आलस्य सिंधु में शेष पर्यङ्क शायी सुषुप्तिनाथ जागेंगे सिंधु में हलचल होगी'। तब काश्मीर विदा! उसका दर्शन सदैव पथ में ही होता है। विजया से जागृति का गीत गाने का प्रण करके वह अन्तिम अन्त में सब के साथ जयनाद करता है।

Q. 9. "Prithvi Sen died a martyr in his short life he left undying fame." Discuss.

Ans. पृथ्वीसेन मन्त्री कुमारामात्य है। वह प्रथमबार पहले अङ्क में दर्शन देकर उसी अङ्क में अपनी जन्म लीला समाप्त कर देता है। वह सच्चा स्वामीभक्त सेवकहै। महाराज कुमारगुप्त से मिलने के लिये जब उसे द्वार पर ही रोका जाता है तो वहपैर पटक कर शोक प्रकट करता है और सारी वध लीला को समझ जाता है। अन्तःपुर के भीतर से क्षीण क्रन्दन को सुनकर वह दण्डनायक तथा यह प्रतिहार के साथ तलवार खींचकर नायकसे युद्ध में तत्पर हो जाता है। पुरगुप्त की जय बोली जाने पर वह तीनों भौंचक्के रह जाते हैं। वह स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकार का प्रश्न रखता है। पुरगुप्त के डाटने पर भी वह प्रमाण मांगता है। वीरतापूर्वक प्राणों पर खेलकर उसका सामना करता है। पुरगुप्त उसे बन्दी बनाने के लिये भटार्क को आज्ञा देता है। बन्दी होने

से पूर्व भी वह घोषणा कर देता है कि 'अत्याचारी हाथों में गुप्त साम्राज्य का राज्यदण्ड नहीं टिकेगा । अन्त में चरम बलिदान अर्थात आत्महत्या द्वारा वह जीवन लीला समाप्त कर, अक्षय कीर्ति छोड़ जाता है।

Q. 10. "Bandhu Verma was a great & त्यागी, his त्याग predominates over that of Skand Gupta"

Ans. बँधु वर्मा मालव का राजा है। मालव तथा मगध राज्य में जो संधि हुई उसके अनुसार दोनों राज्य एक दूसरे की सहायता करते थे। शक और हूणों की सम्मिलित वाहिनी ने मालव पर आक्रमण किया है। स्कन्दगुप्त सहायतार्थ आता है। और शत्रुओं को परास्त करता है। बंधुवर्मा का प्रथम दर्शन हमें स्कन्द के न आने के कारण एक घबराई हुई अवस्थामें होता है। बंधुवर्मा स्कंदगुप्तकी इस सहायता से इतने कृतज्ञ हैं कि वह अब मालव का राज्य अपने लिये नहीं चाहते। स्कंदगुप्तको ही राज्याभिषेक का प्रकरण करना चाहते हैं। वह उस उदार-वीर-हृदय देवोपम सौंदर्य, परोपकारी स्कँदगुप्तके लिये सर्वस्व अर्पित करने को तत्पर है। अपनी स्त्री जयमाला के विरोध करने पर भी वह युक्ति पूर्वक उसे समझाता है। देवी! केवल स्वार्थ देखने का अवसर नहीं है। राज्य ध्वांस होचुका था, म्लेच्छोंकी सम्मिलित वाहिनी उसे धूल में मिला चुकी थी, उस समय तुम लोगों को केवल आत्महत्या का ही अवलम्बन निःशेष था। तब इन्हीं स्कंदगुप्त ने रक्षा की थी। यह राज्य अब न्याय से उन्हीं का है। पुरगुप्त को जघन्य अपराध पर भी मगध का शासक बना देने वाले स्कन्दगुप्त के त्याग से उसी त्यागी के प्रति किया गया वह त्याग वास्तवमें महत्व का है, स्त्री तथा भाईके विरोधपर भीवह साम्राज्य

की सुव्यवस्था के लिये, आर्य राष्ट्र के त्राण के लिए उज्जयिनी में साम्राज्याभिषेक का अनुष्ठान करता है। जयमाला भावी दासत्व के जीवन को सम्मुख रखती है किन्तु वह उसे वैभव तथा ऐश्वर्य के लोभ से कृतघ्नता तथा कदर्य्यता का प्रस्ताव कहकर टाल देता है। यदि वह पहले से जयमाला का ऐसा विचार समझता तो अविवाहित ही रहता। बंधुवर्मा खड्ग का अवलम्बन करने वाला सैनिक क्षत्रिय है। उसे विलास की सामग्री का लोभ नहीं। वह कोमल शैया, अकर्मण्यता तथा कठोरता से कोसों दूर रहता है। आर्त्त त्राण परायण होना विपद को हंसते हुये आलिंगन करना, विभीषिका की मुसक्या कर अवहेलना करना, धर्म, देश तथा अबलाओं की रक्षा के लिये प्राण देना क्षत्रिय का कर्त्तव्य समझता है। ममत्व से उसे घृणा है। वह स्वयं महाबलाधिकृत होना भी स्वीकार नहीं करता। वह सब अधिकार भी गोविन्दगुप्त को सौंप देता है।

"आर्य आपके चरणों में बैठकर यह बालक स्वदेश सेवा की शिक्षा ग्रहण करेगा। मालव का राज्य कुटुम्ब एक एक बच्चा, आर्य जाति के कल्याण के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत है। आप जो आज्ञा देंगे, वही होगा।"

गान्धार की घाटी में रणक्षेत्र के अवसर पर वह अत्यन्त ओजस्वनी भाषा में वीरों को उत्साहित करता है, उन्हें युद्ध में प्रोत्साहन करता है—

"वीरो ! तुम्हारी विश्वविजयिनी वीरगाथा सुर सुन्दरियोंकी वीणा के साथ मन्द ध्वनि से नन्दन में गूंज उठेगी। समझ लो आज के युद्ध में प्रत्यावर्तन नहीं है। जिसे लौटना हो, अभी से लौट जाय। उसकी दृष्टि में रणविद्या केवल नृशँसता नहीं है।

कुभा के रणक्षेत्र में वह नदी की तीक्ष्ण धारा को शोणित से लाल करके बहा देने की प्रतिज्ञा करता है। वह स्वयं कहता है "बन्धुवर्मा मरने मारने का जितना पटु है उतना षड्यन्त्र तोड़ने का नहीं"। भटार्क पर वह भी विश्वास नहीं करता। इसी युद्ध में वह प्राण दे देता है।

Q. 11. "Bhim Verma was a more worthy brother of Bandhu Verma than Kumar Gupta was that of Govind Gupta. Justify.

Ans. भीमवर्मा मालव नरेश बंधुवर्मा के अनुज हैं। इनका प्रवेश सहसा उस समय होता है जब हूण मालव पर आक्रमण कर रहे थे। वह जयमाला को दुर्ग के द्वार के टूटने की सूचना तथा अन्तःपुर के द्वार पर स्वयं रक्षाहित रहने का विचार प्रकट करते हैं। कुछ समय पश्चात हम भीमवर्मा को रक्त से लथपथ देखते हैं वह जयमाला से कहता है—

"भाभी ! रक्षा न हो सका अब तो मैं जाता हूँ। वीरों के वरणीय सम्मान को अवश्य प्राप्त करूंगा"।

गिरते गिरते भी भीमवर्मा शत्रु सेनापति को रोकता है तथा जयमाला और देवसेना भी साथ में जुट जाती हैं। भीमवर्मा इतना वीर नहीं जो स्कन्दगुप्त की भांति कह देता "ठहरो देवियो मेरे जीवित रहते स्त्रियों को शस्त्र चलाना नहीं पड़ेगा"।

फिर हम इसे अवन्ती के दुर्ग में बंधुवर्मा तथा जयमाला के साथ स्कंदको विजयोपलक्ष में मालव का राज्य देने की सम्मति में विचार करते पाते हैं। पहले तो केवल इतना कह देते हैं—

"तात आपकी इच्छा है मैं तो अनुचर हूँ"

किन्तु जब जयमाला को कुछ विरोध करते पाता है तो तुरन्त कह बैठता है "वे क्या माँगते हैं ?" किन्तु बन्धुवर्मा उसे बता देते हैं । कि स्कन्दगुप्त ऐसे क्षुद्र हृदय का नहीं है। इस पर भीमवर्मा बड़े साहस पूर्वक जयमाला के विचारकोभीफेरते हैं—

"भाभी अब तर्क न करो। समस्त देश के कल्याण के लिये एक कुटुम्ब की भी नहीं, उसके क्षुद्र स्वार्थों की बलि होने दो। भाभी ! हृदय नाच उठता है जाने दो इस नीच प्रस्ताव को— देखो हमारा आर्यवर्त्त विपिन्न है यदि हम मर मिटकर भी इस की कुछ सेवा कर सकें।"

स्कन्दगुप्त के अभिषेक के समय वह स्वयं छत्र लेकर बैठते हैं आर्य साम्राज्य के उत्थान को आतातायियों के विनाश को दे कर वह हृदय से प्रसन्न होता है। भीमवर्मा को अपने शरीर के लिये जितनी निश्चितता रहती है उतनी और किसी बात के लिये नहीं। अन्त में वह पर्णदत्त की भिक्षा पर फिर देश के लिये सनद्ध हो जाते हैं।

गोविन्दगुप्तका चरित्र उतनाही उज्ज्वल है जितना बन्धुवर्मा का। अन्तर केवल भीमवर्मा तथा कुमारगुप्त के चरित्र में है। किन्तु इन दोनों में भीमवर्मा का चरित्र उज्ज्वलतर है। कुमार गुप्त राजा होते हुये भी कर्तव्य विमुख है तथा विलासिता को वृद्ध होने पर भी नहीं त्यागता। राज्य में होने वाले विद्रोह तथा युद्धों तक की चिन्ता नहीं करता, इसके विरुद्ध भीमवर्मा एक सच्चे क्षत्रिय की भांति सदैव युद्ध में प्राण देने को तत्पर रहता है। बन्धुवर्मा तथा भीमवर्मा दोनों एक दूसरे के भ्रातृत्व को प्रकट करते हैं किन्तु गोविन्दगुप्त जैसे वीर पुङ्गव की समता कुमारगुप्तसे नहीं कर सकते। यदि एक वीर तथा कर्तव्यपरायण

है तो दूसरा कायर तथा कर्तव्य विमुख। यदि एक सच्चे वीर की भाँति युद्ध क्षेत्र में प्राण देकर स्वर्ग प्राप्त करता है तो दूसरा अकर्मण्य होने के कारण विद्रोहियों द्वारा हत्या किया जाता है। वास्तव में बन्धुवर्मा तथा भीमवर्मा वैसे ही दो भाई थे जैसे दो क्षत्री होने चाहियें, किन्तु कुमारगुप्त गौरवान्वित आचरण वाले गोविन्दगुप्त की समता नहीं कर सकता।

Q. 12 "प्रपंच बुद्धि, the most furious is true to his name"

OR

"प्रपंच बुद्धि being a Budhist acted not according to his faith" Elucidate the remark.

Ans. प्रपञ्चबुद्धि एक अत्यन्त भयानक व्यक्ति है। समस्त पात्रों में उसकी भयङ्करता का एक भी पात्र नहीं। अनन्तदेवी के शब्दों में वह 'सूचीभेद्य अन्धकार में छिपने वाली रहस्यमयी, प्रज्ज्वलित कठोर नियति का आवरण उठाकर झाँकने वाला है" उसकी आँखों में सदैव अभिचार खेलता रहता है। उसके हास्य में भी विनासकी सूचना रहती है। वह आंधियों से खेला करता है। बिजली से आलिङ्गन करता है। भटार्क और अनन्तदेवी भी उसके सम्मुख हाथ जोड़ कर सहमे हुये दृष्टिगोचर होते हैं। वह भिक्षुक शिरोमणी होकर भी षड्यन्त्र शिरोमणी है। वह सद्धर्म के अभिशाप की लीला दिखाने को प्रस्तुत है। वह केवल मुंडित मस्तक जीर्ण कलेवर संयासी ही नहीं है। शव चिता पर नृत्य करती हुई तारा का ताण्डव नृत्य तथा सर्वनाशकारिणी प्रकृति की मुण्डमालाओं से कन्दुक क्रीड़ा भी दिखा सकता है। कुमारगुप्त की हत्या कराना उसी का कार्य है। वह अनन्तदेवी

से मिलकर अमावस्या के पहले प्रहर में उल्कापात का समय निश्चित कर जाता है। वह भटार्क जैसे वीर के हृदय को भूकंप की भांति हिला देने वाला व्यक्ति है। उसके मस्तक को चक्कर कटा देता है। वह क्रूर-कठोर-नर पिशाच है। ठीक उल्कापात के समय भटार्क आदि कुमारगुप्तकी हत्या करते हैं। इसके पश्चात हम उसे महादेवी देवकी की हत्या में तत्पर देखते हैं। वह चौकन्ना होकर कार्य करता है क्यों कि वह जानता है कि प्रत्येक भित्ती के किवाड़ों में कान होते हैं"। वह अनन्तदेवी तथा पुर-गुप्त की बौद्धमतावलम्बी होने के कारण से तथा धन के लोभ से सहायता करता है। स्कन्द को राज्य प्राप्त न होने देना तथा कुमारगुप्त एवं देवकी की हत्या को वह धर्म की रक्षा समझता है क्यों कि यह तीनों बौद्ध न थे। देवकी को वह राजधानी में विद्रोह कारण समझकर उसे संसार से दूर करना चाहता है। हत्या करते करते उसका पेट नहीं भरता। तीसरी बार वह विजया के प्रपञ्च से देवसेना की बलि उग्रतारा को दिया चाहता है। वह उसकी ललाट लिपि को अच्छा कहकर सहर्ष, देवसेना के लिये प्रस्तुत करने का उपाय रचता है। "वह नश्वर शरीर जिसका उपयोग तुम्हारा प्रेमी भी न करसका देवसेना में अर्पित करो! उग्रतारा मङ्गल करेगी" 'डरो मत, तुम्हारा सृजन इसी लिये था, नित्य की ज्वाला में जलने से तो यही अच्छा है कि तुम एक साधक का उपकार करती हुई अपनी ज्वाला शाँत कर दो।" किन्तु ज्यों ही खड्ग उठाता है स्कन्दगुप्त सहायतार्थ आ जाता है तथा मातृगुप्त उसका हाथ पकड़ लेता है।

प्रपञ्च बुद्धि वास्तव में प्रपञ्च बुद्धि है। वह "यथा नाम तथा गुण" है अर्थात जैसा उसका नाम है वैसे ही उसके गुण भी हैं। उसकी बुद्धि में सदैव प्रपञ्च भरा रहता है। वह किसी

न किसी प्रपंच के रचने की ताक में रहता है। एक प्रपंच समाप्त नहीं होने पाता कि दूसरा रचता है। किन्तु उसकी अन्तिम इच्छा सफल होने नहीं पाती ; हमें फिर उसका दर्शन नहीं हो पाता। न जाने उसका क्या हुआ ? प्रसाद जी ने यह एक भूल की है कि उसका अन्तिम परिणाम नहीं दिखाया और न ऐसे नर-पिशाच को कोई दण्ड ही दिलाया।

Q. 13. "Pur Gupta is a mean, sordid & weak fellow" Bring it out clearly from his character.

Ans. अपने पिता का निधन कराकर पुरगुप्त गुप्त साम्राज्य के उत्तराधिकार नियम को अव्यवस्तिथ बनाता है। वह पृथ्वी सेन को डांटकर कहता है—

"चुप रहो तुम्हें बैठ कर व्यवस्था नहीं देनी होगी, उत्तराधिकार कानिर्णय स्वयं स्वर्गीय सम्राट कर गये हैं"। महाप्रतिहार दण्डनायक तथा पृथ्वीसेन सरीखे स्वामी भक्तों की हत्या पर वह कहता है—

"पाखण्डी स्वयं विदा हो गये"।

दूसरे अङ्क में वह दिखाई नहीं पड़ता। तीसरे अङ्क में वह गर्व से फूला नहीं समाता औरों की सहायता पर भी नाचता रहे 'विजय पर विजय ! देखता हूं कि एक बार वक्षु तट पर गुप्त साम्राज्य की पताका फिर फहरायेगी। गरुड़ध्वज वक्षु के रेतीले मैदान में अपनी स्वर्ण प्रभा का विस्तार करेगा।"

स्वयं उसकी माता उसे स्वयं धिक्कारती है—

"परन्तु तुमको क्या ? निर्वीर्य्य, निरीह बालक ! तुम्हें भी

इसकी प्रसन्नता है ? लज्जा के गर्त में ही डूब जाते। और भी छाती फुला कर इसका आनन्द मनाते हो।

इस पर भी वह मौन हो जाता है कोई वीरोपयुक्त उत्तर नहीं देता। उसकी माता उसे बीच में बोलने पर भी चुप कर देती है। वह अकर्मण्य की भांति पूछता है—

"यह क्या हो रहा है" ?

उसकी माता बतलाती है कि उसे सिंहासन पर बैठाने का सामान हो रहा है। वह मद्यप है। विजया के हाथ से मदिरा पीता है। सैनिक से कहता है—

"आओ मित्र! हम तुम कादम्ब पियें, जाने दो इन्हें, इन्हें लड़ने दो"।

उसकी माता विजया को उसकी रानी बनाना चाहती है। किन्तु विजया भी उसे तुच्छ समझकर कहती है—

"हां वह कुमारगुप्त का पुत्र है, परन्तु वह तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न है— छि"

विजया क्षुद्र पुरगुप्त के विलास-जर्जर मन और यौवन में ही जीर्ण शरीर का अवलम्बन करना नहीं चाहती। पुरगुप्त षड़यन्तमें विफल होता है, वह अनन्तदेवी तथा अन्य षड़-यन्त्रियों के साथ बन्दी होता है, स्कन्द उसे क्षमा प्रदान करता है। वह स्कन्द के पैरों पर गिर कर कहता है—

"देव! अपराध हुआ" स्कन्द उसपर दया करके उसे ही राज्य दान कर देते हैं। उसे कोई वीर आदि का सम्बोधन नहीं देता।

Q. 14 Kumar Dass disguised himself as Dhatu Sen add something to his knowledge by studying India. Show his intelligence.

Ans. सर्व प्रथम हम सिंहल के राजकुमार कुमारदास को धातुसेन के रूप में कुसुमपुरके राजमन्दिर में कुमारगुप्त के साथ विनोदात्मक तथा हास्यात्मक वार्तालाप करतेपाते हैं। कुमारदास तथा कुमारगुप्त लंका के प्राचीन इतिहास पर कुछ व्यङ्गपूर्ण वार्तालाप करते हैं। धातुसेन कुमारगुप्त के स्त्रैण होने पर व्यंग करते हैं। स्त्री को अनुकूल मन्त्रणा ग्रहण करने का आदेश देते हैं। कुमारगुप्त को युद्ध से पराँगमुख देखकर वह उस पर भी कटाक्ष कर देते हैं—

"सम्राट होने पर भी युद्ध"।

विनोद के कारण वह और भी अपने पहिले व्यंग को तीव्र करके कहता है— क्यों कि वह जानता है कि कुमारगुप्त से युद्ध कहीं भी नहीं हो सकता—

"यदि दक्षिण पथ पर आक्रमण करने का आयोजन हो तो मुझे आज्ञा मिले। मेरा घर पास है, मैं जाकर स्वच्छन्दता पूर्वक लेट रहूँगा, सेना को भी कष्ट न होने पावेगा।"

यहां धातुसेन ने मीठी चुटकी से काम लिया है। स्पष्ट यह कह देने से कि तुम तो विलासी तथा जर्जर हो, तुम्हारे बस का युद्ध करना नहीं है, क्रोध का उत्पादक हो जाता। अतएव चतुरता से धातुसेन से गम्भीर बात को भी हास्य की भीनी चुटकी से कहा— वह 'राजपुत्र भेड़िये हैं' कहकर भी पुरगुप्त के षड़यन्त्र होने का संकेत कर देता है। वह पुरगुप्त के पिता कुमारगुप्त को सचेत होने का भी संकेत कर देता है, किन्तु फिर भी निश्चित

रहने के कारण ही कुमारगुप्त का निधन हुआ। अनंतदेवी की दुष्टता भी— 'राजा लोग विवाह ही न करें, क्यों भेड़ियों सी संतान उत्पन्न हो' इन शब्दों द्वारा प्रकट कर देता है। जैसा वृक्ष होता है वैसे ही फल लगते हैं। अनन्त देवी भी इसी कारण उसे क्रुद्धहोकर देखती है। उसकी सीमा से बाहर बात करने पर कुमारगुप्त को भी उसे मुह लगाने से रोकती है। कुमारगुप्त उसे केवल एक अबोध विदेशी हंसोड़ा समझकर सचेत न होकर अपना विनाश कर लेते हैं।

कुमारदास विद्वान होने के कारण मातृगुप्त की कवित्वमय उक्तियों की सराहना करता है। जीवन पर्यन्त के लिये उसे स्मृति में स्थान देता है। स्वप्नों का देश ही भव्य भारत उसे दिखाई दिया। उसे छोड़कर देश की पुकारपर वह पुनः सिहल जाने का विचार करता है। यह लङ्का का युवराज अपने एक बाल सहचर मित्र, प्रख्यात कीर्ति से मिलने तथा गुप्त सम्राज्य का वैभव देखने विनोदशील पर्य्यटक के रूप में भारत चला आता है। वह गौतम के पदरज से पवित्र भारतभूमि को दर्प से उद्धत पाता है गुप्त साम्राज्य के तीसरे पहर के सूर्य में वह भावी परिवर्तन देख कर जाता है। परिवर्तनशील जगत को वह सदैव कृपाशील मानता है। उसके विचार में समय स्त्री और पुरुष की गेंद बना कर खेलता है। पुलिंग तथा स्त्रीलिंग की समष्टि को अभिव्यक्त की कुञ्जी मानता है। पुरुष रूपी प्रश्न का उत्तर वह स्त्री को मानता है। स्त्री पुरुषको वशीभूत करके मन चाहा नाच नचाती है वह थोड़े दिन के रहने में ही आर्य साम्राज्य की वास्तविक दशा जान लेता है। इसी कारण स्पष्ट कह देता है—

"काले मेघ क्षितिज में एकत्र हैं, शीघ्र ही अंधकार होगा।

परन्तु आशा का केन्द्र ध्रुवतारा एक युवराज स्कन्द है। एक विकट अभिनय का आरम्भ होने वाला है।

इसके पश्चात वह चतुर्थ अङ्क में ब्राह्मण और बौद्धों को बलि पर झगड़ते हुये देख विद्वता पूर्ण गम्भीर भाषा में समझाता है। आरम्भ में वह जितना विनोदशील है यहां उतना ही गभीर हो जाता है। वह बौद्धमत का वास्तविक सार खोल कर सामने रख देता है।

"जाति भीत और त्रस्त है, उसका धर्म असहाय अवस्था में पैरों से कुचला जा रहा है। क्षत्रिय राजा, धर्म का पालन करने वाला राजा, पृथ्वी पर नहीं रह गया? आपने इसे विचारा है। क्यों एक वर्ण के लोग दूसरों की अर्थकरी वृत्तियाँ छीन रहे हैं? जो पारास्य देश की मूल्यवान मदिरा रात को पी सकता है, वह धार्मिक बने रहने के लिये प्रभात में एक गो निष्क्रय भी कर सकता है। धर्म इतना निर्बल है कि वह पाशव बल द्वारा सुरक्षित होगा?"

वह दोनों ओर के मनुष्यों को समझाता है—

"ब्राह्मण क्यों महान हैं? इसीलिये कि वे त्याग और क्षमा की मूर्ति हैं"। इसी के बलपर बड़े बड़े सम्राट उनके आश्रमों के निकट निरस्त्र होकर जाते हैं और वे तपस्वी साय प्रातः अग्निशाला में भगवान से प्रार्थना करते हैं। अन्त में अपने मित्र प्रख्यात कीर्ति से मिलकर वह लौट जाता है।

Q. 15 Prikhyat Kirti along with Dhatu Sen is introduced by the author for a full support of Budhism only. Explain.

Ans. प्रख्यातकीर्ति लङ्का राजकुल का श्रमण है। वह नाटक के मुख्य कथानक में कोई भाग नहीं लेता है, धातुसेन उसी के नाते बौद्ध धर्म का प्रतिपादन करता है। नाटक में बौद्ध और ब्राह्मणों का झगड़ा व्यर्थ बढ़ाया है। प्रसाद जी ने न जाने क्यों नाटक के मूल ही में बौद्ध धर्म को रक्खा है। प्रपञ्च बुद्धि भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये ही पुरगुप्त तथा अनन्तदेवी की सहायता करता है। जो नाटक की मूल घटना है। बौद्धमत के इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने केलिये एक पृथक ही पुस्तक होनी चाहिये थी। नाटक का कलेवर उससे व्यर्थ बढ़ाया गया। इससे नाटक के अभिनेता पर भी प्रभाव पड़ता है। दर्शकगण बैठे २ ऐसी लम्बी झगड़े की बातों को सुनकर ऊब जाते हैं।

प्रख्यातकीर्ति हमें सर्व प्रथम धातुसेन से वार्तालाप करता हुआ मिलता है। प्रख्यातकीर्ति का चरित्र शुद्ध तथा उच्च है। वह धर्म लाभके सामने महास्थविर बनना स्वीकार नहीं करता। धातुसेन उसे भारत भर में इस पद के सर्वथा उपयुक्त समझता है क्यों कि उससे संघ की मलिनता बहुत कुछ धुल जायगी।

भिक्षुक द्वारा बलि का समाचार पाकर वह उस स्थान पर पहुंचकर उन्हें बलि देने से रोकता है। वह कहता है—

"धर्मके अन्ध भक्तो! मनुष्य अपूर्ण है। इसीलिये सत्य का विकास जो उसके द्वारा होता है अपूर्ण होता है। सभी धर्म समय और देश की स्थिति के अनुसार विवृत हो रहे हैं और होंगे। हम लोग एक ही मूल धर्म की दो शाखाएँ हैं। आओ हम दोनों अपने उदार विचार के फूलों से दुःख दग्धमानवों का कठोर पथ कोमल करें।

उसके विचार अत्यन्त उच्च तथा उदार दिखाये गये।

प्रसाद जी की इतनी कृपा किसी अन्य पात्र पर दिखाई नहीं पड़ती। वह प्राणीमात्र को समझता है। वह जात्र को छुड़ाकर

उसके स्थानपर बलिके लिये अपने शरीर को प्रस्तुतकर देता है–
"लो मेरा उपहार देकर अपने देवता को सन्तुष्ट करो"।
ब्राह्मण तलवार फेंक देते हैं। यही है उसके चरित्र की उज्ज्वलता !

Q. 15 Comment upon the Comic part performed by the Court Jester. Mudgala.

Ans. प्रसाद जी का पात्र मुद्गल कुशल विदूषक नहीं है। वह व्यङ्ग करने में चतुर नहीं है। वह हास्य उपस्थित करने में भी कुशल नहीं है। इसीकारण प्रसादजी ने इसकी पूर्ति धातुसेन के व्यङ्गपूर्ण तथा विनोदात्मक वार्तालाप द्वारा की है। मुद्गल केवल एक अनुचर मात्र है। वह प्राचीन संस्कृत के विदूषकों के ढङ्ग का है। सँस्कृत नाटकोंकी भग्नावशेष स्मृति है। पाठकों का पूर्ण मनोरञ्जन नहीं हो पाता। यदि मुद्गल का पूर्ण विश्लेषण किया जाय तो हर बार उसका भिन्न रूप दिखाई पड़ेगा। यदि उसके वक्तव्य के पूर्व मुद्गल न लिखा जाय तो यह समझना दुष्कर हो जाता है कि वह विदूषक है। एक अङ्क में चार स्थानों पर मुद्गल के चार भिन्न रूप हैं। मुद्गल संस्कृत नाटकों की भाँति पेट भी है। "परन्तु हाथ का मुख से, पेट का अन्न से, और आंखों का निद्रा से भी सम्बन्ध होता है कि नहीं ? इसको भी कभी सोचा विचारा है ?"

कहीं कहीं वह बड़ी गम्भीरतापूर्वक वार्तालाप करता है। अपनी मूर्खताओंको छिपाकर, पापों पर बुद्धिमानी का आवरण चढ़ा कर मनुष्य किस प्रकार अपनी मूर्खताओं को छिपा कर द्विपद होकर चतुष्पद पशु से बढ़ जाता है इसका विश्लेषण वह अच्छा करता है। उसे सदैव भोजन का ध्यान रहता है। "किसी के सम्मान-सहित निमन्त्रण देने पर, पवित्रता से हाथ पैर धोकर चौके पर बैठ जाना एक दूसरी बात है और मटकते

कूदते हाथ पैर पूजा कराते मार्ग चलना एक भिन्न वस्तु है—

उसका व्यङ्ग भी मन्द होता है —

'रता पेट कर लेगा, कोई दे भी तो अक्षय तूणीर, अक्षय कवच सब लोगों ने सुना होगा, परन्तु इस अक्षय मंजूसा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता। इसके भीतर कुछ रख कर देखो, मैं कैसी शान्ति बैठा रहता हूँ"।

उसमें पंडताऊपन भी है। शब्दों की यथार्थवाची आवृति है—

"परन्तु, यदि, पुनश्च, तथापि, फिर भी ऐसी आज्ञा मिलो तो साष्टांग प्रणाम"।

"ठहरो भाई! हमारे जैसे साधारण लोग अपनीगठरी आप हो ढाते हैं। तुम कष्ट न करो।

उसके हास्य में कुछ तत्व वा नवीनता नहीं है।
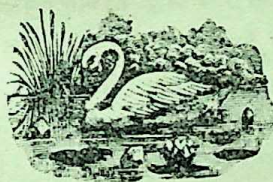
FEMALE CHARACTERS.

Q. 17 Discuss the character of Vijia with reference to his inconsistancy in love.

Ans. विजया मालव के धन कुबेर की कन्या एक वीर क्षत्राणी है। अर्थ देकर विजय खरीदना उसके लिये वीरता के प्रतिकूल है। युद्ध के अवसरपर उस वीरांगना को गान अखरता है। वह कहती है— "युद्ध और गान" इस गायन में सहमत होने वाली जयमालासे वह कहती है—"रानी ! तुम लोग आग की चिनगारियां हो"। विजयी स्कन्दगुप्त को देखकर वह पहली दृष्टि में ही मोहित हो जाती है—

"अहा कैसी भयानक और सुन्दर मूर्ति है"। यह है पहली दृष्टि का प्रेम— "Who ever loved who loved not at the first sight" द्वितीय अङ्क के आरम्भ में हम उसे उत्कट समाज समालोचका के रूप में पाते हैं। "नरक यही मनोहर जगत है। कृतघ्नता और पाखण्ड का साम्राज्य यहीं है। छीना झपटी, नोच खसोट, मुंह में से आधी रोटी छीनने वाले विकट जीव यहीं तो हैं। शमशान के कुत्तों से भी बढ़कर मनुष्यों की पतित दशा है।

उसकी हृदय की वृत्तियाँ निराशावाद की ओर हैं। स्कन्दगुप्त के प्रति उसके प्रेम का कारण राजकीय प्रभाव है। वह महिषी बनने की आकांक्षा से उसपर मोहित होती है। जब वह स्कन्दगुप्त को राज्य की ओर से उदासीन पाती है तो उसका हृदय परिवर्तितहो जाता है। वह वीर महाबलाधिकृत भटार्कपर अपना हृदय लगाती है। उसकोदेखकर वह उसकी "वीरत्व व्याजक

मनोहर मूर्तिपर आसक्त हो जाती है। यद्यपि वह जानती थी कि वह अनुदार, लालची तथा कृतघ्न है क्योंकि वह कमला से सब सुन चुकी है। जब उसे विदित होता है कि देवसेना भी स्कन्दगुप्त को प्रेम करती है तथा मालवका राज्यस्कन्दको सौंपकर प्रेम क्रीत कर लिया गया है तो उसकी आशायें नितान्त रूप से विलीन हो जाती हैं। अब वह और कुछ चारा न पाकर पूर्णरूपेण भटार्क पर ही मोहित हो जाती है। वह गोविंदगुप्त के सम्मुख भटार्क के साथ वंदिनी होकर कह देती है—"मैं वन्दी की अभिलाषिनी हूँ"। यही नहीं वह स्कन्दगुप्तके सम्मुख भी कह उठती है 'परन्तु मैंने भटार्क को वरण किया है'। उसकी ईर्ष्या प्रज्वलित होजाती है और वह देवसेना से प्रतिशोध लेने को तत्पर हो जाती है। "राजकुमारी आज से मुझे देखना मत। मुझे कृत्या अभिशाप की ज्वाला समझना। उसका अन्त करने के लिये वह प्रपञ्चबुद्धि से मिलकर उसे श्मशान में लेजाती है। विजया अपने प्रेम में अस्थिर है। उसके हृदयमें एक बार पुरगुप्त का भी विचार आता है—"अहा! यदि आज राजाधिराज कहकर युवराज पुरगुप्त का अभिनन्दन कर सकती"। अपना ध्येय पूर्ण करने के लिये वह सोलह आने अनन्तदेवी की होकर भी फिर उसे सीधी सुनाती है। जहाँ तनिक सी उसे ठेस पहुँची वह तुरन्त शत्रु का विनाश करना चाहती है। वह कहती है—

"मैं पासा पलट सकती हूँ जो भूला ऊपर उठा हुआ है उसे पृथ्वी चूमने के लिए विवश कर सकती हूँ"। अनन्त देवी उसे राज्य का प्रलोभन देकर अपने पुरगुप्त की रानी बनाने की अभिलाषा करती है। किन्तु विजया की कोई उच्च प्रवृत्ति जागृत हो उठती है और वह कह उठती है—

"प्रलोभन से, भय से, धमकी से कोई भी मुझे नहीं वञ्चित कर सकता, मुझे तुम्हारा सिंहासन नहीं चाहिये। किन्तु उसकी दशा इसके कारण दीन हो जाती है। अनन्त देवी उससे शत्रुता करने लगती है। विजया अब दोनों ओर की नहीं रहती। वह सत्य का पक्ष त्यागकर विपक्षमें आई किन्तु वहाँ भी उसे प्रतारणा मिली। विजया ने असत् पक्ष में ताण्डव नृत्य किया अतएव उसे उसकी सारहीनता विदित होगई। अतएव भविष्य में उसका पूर्ण परिवर्तन हो जाता है। वह रक्त बहाने वाले क्रूर सैनिकों से भी घृणा करती है। वह अनाथ निःसहाय हो जाती है अब वह देश के कल्याण के शुभागमन के लिए कटिबद्ध है। उसका चरित्र सहसा उज्ज्वल हो जाता है। वह अब मातृगुप्त को भी जागृति का गीत गाने को उत्तेजित करती है।

"गा चुके मिलन सङ्गीत, रो चुके प्रेम के पचेड़, अमर भारत की सेवा को सन्नद्ध हो जायँ। मुचकुन्द की मोह निद्रा से भारत-वासी जाग पड़े। हम तुम लोगोंको जगावेंगे"। वह स्वयं मानती है—"स्वार्थ में ठोकर लगते ही मैं परमार्थ की ओर दौड़ पड़ी" वह सेना संकलन करने केलिये रत्नग्रह देकर तथा देशसेवा करके स्कन्द के हृदय को जीतना चाहती है। अब वह अपने प्राणाधार स्कन्दगुप्त के लिये भटार्क का संसर्ग त्याग कर उसकी सेवा के उपयुक्त बनकर पुनः प्रणय याचना करती है। किन्तु स्कन्दगुप्त पहले ही कौमारव्रत ले चुका था, अतएव वह उसे पिशाची कह कर चरण पड़ी हुई को ठुकरा देता है। इसी बीच में भटार्क उस की उस लीला को आकर देख लेता है। वह उसे उसकी दुश्चरित्रता पर डाटता है। इस घोर अपमान पर वह छुरी मार कर गिर जाती है। विजया का चरित्र एक विचित्र पहेला है। बिजली के अक्षर पढ़े जा सकते हैं, किन्तु उसकी गुप्त

लिपि नहीं ज्ञात हो सकती। उसके चरित्र का उत्थान पतन अत्यन्त शीघ्रता से होता है। उसके जीवन में स्थिरता का नाम भी नहीं। युद्ध में उसे केवल अपने धन की रक्षा की चिन्ता है। यह अपनी असावधानी का दोष देवसेना पर फेंक देती है।

विजया प्रेम को एक विनोद मात्र की सामग्री समझती है। इसी कारण हम उसके प्रेम में अस्थिरता पाते हैं। उसमें यत्र तत्र जो वीरता का भाव दीखता भी है वह अपने प्रेम मार्ग के रोड़े दूर करने के लिये, वह अनन्तदेवी से कहती है—

"तुम भटार्क से मुझे नहीं हटा सकती, प्रणय वांछित स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े, विघ्नों को दूर करने के लिये वज्र से भी दृढ़ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली रमणी के प्रति हृत-सर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक ज्वालामुखी विस्फोट से भी विभत्स और प्रलय की अनल शिखा से भी लहरदार होती है"।

वह एक दुर्बल रमणी हृदय है जो थोड़ी अग्निसे उष्ण और शीतल हाथ फेरते ही ठंडा। अपना रूप धन, यौवन दूसरे को दान करके उसने देवतुल्य स्कन्द से विद्रोह किया, गर्व के गर्त्त में गिरी स्वार्थ पूर्ण मनुष्यों की प्रतारणा में पड़कर उसने ऐहिक सुख तथा पारलौकिक शाँति को तिलांजलि दे दी। आवश्यकता ही उसके व्यवहारों की दलील है। जब वह पुनः स्कन्द से प्रणय याचना करती है तो वह उसे उपयुक्त ही उत्तर देता।

"विजया पिशाची हट जा"।

भटार्क उसके प्रति कहता है—

"निर्लज्ज हारकर भी नहीं हारता, मरकर भी नहीं मरता"।

Q. 18. "Music was her life, love was pure and restrained with her and a deserving sister of

BandhuVerma she was with best female character.' Discuss the above with reference to the character of Devasena as compared in love to Vijiya.

Ans. स्त्री पात्रों में देवसेना का चरित्र सर्वोज्ज्वल है। हूणों द्वारा पादाक्रांत देशमें उसे देशके मान का, स्त्रियों की प्रतिष्ठा का शिशुओं की रक्षा का ध्यान है विजया की भांति धन की चिंता नहीं। गान उसका जीवन है। वह बिना गाये जीवित नहीं रह सकती। गान ही उसके जीवन को शांति प्रदान करता है विजया चाहे विरोध करे। किन्तु देवसेना बर्बर हूणोंकी अपार धनराशि में से एक क्षुद्र अंश उन्हें देकर भी शांति स्थापित करने के पक्ष में है। वह निश्चिन्तता पूर्वक भाई बन्धुवर्मा से दुर्ग का भार ले लेती हैं। परन्तु युद्ध के समय उसका गान सर्वथा अनुचित है बन्धुवर्मा के जाते ही वह विजया को वीणा देकर गाना चाहती है किन्तु विजया विरोध करती है—"युद्ध और गान" ?

उसका यह अपराध इस कारण क्षम्य हो सकता है कि देव सेना केवल स्वाभाविक मनोविनोद के लिये गाती है जीवन का प्रत्येक क्षण विपत्ति ग्रस्त होने के कारण न जाने युद्ध में दुर्ग में कब प्राण चले जायं। इस दृष्टि से वह मरने से पहले अपने प्रिय गान को अन्तिम बार गाना चाहती है—

"एक बार गालूं, हमारा प्रिय गान फिर गाने को मिले या न मिले"। दुर्ग पर आक्रमण होने पर वह छुरी को सुन्दर वस्तु के रूप में कलेजे में रखने को तत्पर है। किन्तु विजया उसे भयानक समझकर उस कृपाण से दूर रहती है। वह पुरुषों की भाँति जयमाला और भीमवर्मा की सहायता से युद्ध करती है।

देवसेना विजया के विरुद्ध इसी पृथ्वी पर स्वर्ग मानती है। उसके विचार अत्यन्त उच्च हैं। वह कहती है—

"पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुख, पुण्य की कसौटी है पाप"।

आकाश के सुन्दर कुसुम कोमल नक्षत्रों में भी वज्र की भांति कठोरता होना वह सम्भव समझती है। स्वयं गान-प्रिया होने के कारण वह 'स्वर्गीय संगीत की प्रतिभा तथा स्थायी कीर्ति वाले' प्राणियों को स्वर्ग का अनुमान कराने वाले समझती है। विजया की हृदय वृत्ति के अनुसार जगत नर्क और मनुष्य श्मशानों के कुत्तों से बढ़कर हैं। देवसेना जहाँ प्रेम का स्थल हो, उसी को स्वर्ग समझती है। वह विजया को स्मरण कराती है कि जिस असाधारण महत्व के कारण उसका उद्दंड हृदय स्कन्द के सामने अभिभूत हुआ है, जहां उसकी कल्पना नीड़ बनाकर विश्राम करने लगे वही स्वर्ग है। वैभव का अभाव विजया को खटकता है देवसेना को नहीं। वह जानती है कि धनिक विद्या सौन्दर्य, बल पवित्रता तथा हृदय तक को ऐश्वर्य से नापते हैं वह विजया को प्रेम करने का, मनुष्य को आकर्षित करने का ढङ्ग बताती है—

"सुन्दर वसन, भरा हुआ यौवन नये आभूषण, विह्वलता का अनुभव और फिर दो गर्म गर्म आँसू"।

इसके साथ भी वह बागेश्वरी की करुण कोमल तान जोड़ देती है। उसके लिये बिना गान के कोई कार्य नहीं। विश्व के प्रत्येक कम्प में वह ताल मानती है। विजया के लिये गान केवल रोग है। बंधुवर्मा भी अत्यधिकता के कारण देवसेना को गान का रोग बतलाते हैं। किन्तु वह कहती है—'यह रोग अच्छा है क्योंकि इससे बहुत रोग अच्छे होते हैं। वह जानती है पुरुषों के पास छिपा रखने का एक रहस्य है' जो खोलकर कह देने में पुरुषों

की मर्यादा घटती है'। वह मुस्कराहट में वेदना छिपा लेते हैं। देवसेना को सँसार का बहुत अनुभव है विजया दुर्बोध है। बन्धुवर्मा को मालव का राज्य स्कन्द को उत्सर्ग करने में बाधा डालने वाली भाभी जयमाला को वह अपने भाई की ही भाँति सर्वात्मा में व्यक्तित्व विस्मृत कर देने का उपदेश करती है। अपराधिनी विजया को वह स्कन्दगुप्त से "सम्राट विजया मेरी सखी है"। कहकर उसको मुक्त कराती है, किन्तु विजया फिर भी कृतघ्नता से प्रपञ्च बुद्धि द्वारा उसकी बलि का षड्यन्त्र करती है। देवसेना अपना प्रेम गुप्त रखती है। यह जानते हुये भी कि प्रेमपात्र स्कन्द को विजया भी प्रेम करती है वह उससे डाह नहीं करती! स्कन्द का भी मन उस ओर देखकर केवल इतना कहती है—

"विजया आज तू हारकर भी जीत गई"।

वह विजयाको भटाकं पर अस्थिरता के कारण मन लगानेसे रोकती है। उसकी तीव्र मनोवृत्ति के कशाघात से उसे विपथगामिनी होने से बचाती है। विजया इसे व्यङ्ग समझती है। यद्यपि देवसेना ने विजया के'मार्ग को स्वच्छ करने के सिवा रोड़े नहीं बिछाये' किन्तु विजया के लिये तो 'उपकारों की ओट में स्वर्ग को छिपा दिया' कामनालता को समूल उखाड़ कर नष्ट कर दिया। किन्तु देवसेना कभी भी 'मूल्य देकर प्रणय नहीं लिया चाहती'। उसके विचार सात्विक हैं। विजया की भाँति विभत्स श्मशान उसके लिये डरने की वस्तु नहीं। वह उसे ससार का मूक शिक्षक, जीवन की नश्वरता के साथ ही सर्वात्मा के उत्थान का सुन्दर स्थल समझती है'। देवसेना की कामनायें, विस्मृति के नीचे दबादी गई हैं। वह अपने प्रेम को श्मशान में मरण निकट देखकर 'प्रियतम! मेरे देवता युवराज!' कहकर प्रकट करती है।

स्त्रियोचित, ललना सुलभ, लज्जा का भूषण भी वह रखती है। उसके हृदयमें जब रुदन का स्वर उठता है तभी संगीत की वीणा मिला लेती है। उसी में सब छिपा लेती है। देवसेना की यह मार्मिकता पाठकों के हृदय में भी एक टीस उत्पन्न करती है। उस के उद्गार एक दम प्रस्फुट हो जाते हैं। प्रेम सरिता का वेग रोके से भी नहीं रुकता-'नहीं प्यारी सखी, आज तो प्रेम के नाम पर जी खोलकर रोती हूं, बस फिर नहीं, वह विपत्तिमें भी 'कूलों से उफन कर बहने वाली तुमुल तरङ्ग तथा प्रचंड पवनग्रस्त प्रेम सरिता में' अपनी जीवनतरी खे लेती है। हम उसे नित्य महादेवी देवकी की समाधि स्वच्छ करते तथा उसपर पुष्प चढ़ाते पाते हैं कुचले हुये म्लान पुष्पोंकी भाँति वह नारीजीवन को क्षुद्र समझती है। उसके कुटिया के भिक्षुक जीवनमें भी स्कंद का प्रेम प्रज्वलित रहता है। वह कहता है—'देवसेना ! बड़ी बड़ी कामनायें थीं। कभी हमने भी तुझे अपने काम की बनाया था' किन्तु देवसेना अपने प्रायश्चित को तोड़ना नहीं चाहती वह मृत बन्धुवर्मा की आत्मा को क्या उत्तर देगी। वह युद्ध में क्षत विक्षत मनुष्यों की सेवा अपने आश्रम में किया करती है। देवसेना का प्रेम शुद्ध सात्विक प्रेम है उसमें कामवासना की गन्ध नहीं। मालव ने जो राज्य का उत्सर्ग स्कंद के प्रति किया वह स्कंदके प्रेम द्वारा उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा बंधुवर्मा का अपमान नहीं करेगा। यद्यपि स्वयं बन्धुवर्मा की इच्छा देवसेना का विवाह स्कन्द से कर देने की थी। किन्तु देवसेना इसका उपयुक्त उत्तर देती है—

"परन्तु क्षमा हो सम्राट ! उस समय आप विजया का स्वप्न देखते थे"। मैं आजीवन दासी बनी रहूँगी परन्तु आपके प्राप्य में भाग न लूंगी स्कंद उसके लिये स्वयं कानन का जीवन व्यतीत करने को तत्पर है। इस पर विजया केवल हृदय ही खोलकर

रख देती है, महत्व नहीं जाने देती—"आह ! कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई इस हृदय में आया! न वह जायगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिये। उसे कामना के भँवर में फंसा कर कलुषित न कीजिये। नाथ! मैं आपकी ही हूँ। मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती"।

इसे कहते हैं शुद्ध सात्विक प्रेम ! यह है भारतीय प्रेम जिस की समता पाश्चात्य प्रेम नहीं कर सकता, इस पर स्कन्द भी आजन्म कौमार व्रत धारण कर लेता है। देवसेना हृदय पर पत्थर रखकर यह सब कुछ करती है। क्योंकि हम उसे यह कहते हुये पाते हैं—

"हृदय की कोमल कल्पना, सो जा ! जीवन में जिस की संभावना नहीं जिसे द्वार पर आये हुये लौटा दिया था उसके लिये पुकार मचाना अच्छा नहीं" अन्त में वह सुख दुःख सबसे बिदा ले लेती है— "आह ! वेदना मिली बिदाई"। नाटक का अन्त उसी के शब्दों में होता है। 'कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। मेरे इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य ! क्षमा ! वह स्वर्ग की देवी है।

Q. 19 "Though brave but somewhat greedy Jaimala was a worthy wife of Bandhu Verma" Discuss.

Ans. वीराग्रणी बन्धुवर्मा की हृदयेश्वरी, मालव की रानी, जयमाला हमें सर्व प्रथम अवन्तिके दुर्ग में अपने शुभ दर्शन से कृतार्थ करती है दुर्ग शक तथा हूणों की सम्मिलित वाहिनी द्वारा आक्रांत है। देवसेना तथा विजया के साथ वह विजय संबंधिनी बातें कर रही है। वह अपार धन राशि का एक क्षुद्र अंश देकर

धन लोलुप शृगाल आक्रमणकारियों से रक्षा करना चाहती है। यहां जयमाला का चरित्र कुछ अव्यवस्थित सा हो जाता है वह एक ओर धन देकर विजय मोल लेना चाहती है, शत्रुओं के प्रपीड़न से सुरक्षित रहना ही श्रेष्ठ समझती है तथा दूसरी ओर वह बन्धुवर्मा से स्कन्दगुप्त का अभिनय करने को कहती है। वह बन्धुवर्मा को सिंह विक्रम से शत्रुसेना पर टूटने का प्रोत्साहन देकर स्वय दुर्ग रक्षा का भार ले लेती है। एक ओर तो वह एक वीराँगना क्षत्राणीकी भांति 'चिरसङ्गिनी खड्गलता' से अपार स्नेह करती है। दूसरी ओर वह युद्ध तथा गान में समता देखने लगती है। किन्तु उसका यह गान देवसेना के प्रिय मृदु कोमल गान से भिन्न है। युद्ध रूपी गान में रुद्र के शृङ्गीनाद, भैरवी के ताण्डव नृत्य तथा शस्त्रों के वाद्य द्वारा भैरवी संगीत की सृष्टि है। केवल सच्चे वीर ही जीवन के इस अन्तिम दृश्य को प्राणों की आहुति देकर देखने का साहस करते हैं। जयमाला युद्ध को 'ध्वंसमयी महामाया प्रकृति का निरन्तर संगीत' मानती है। उसे श्रवण करने के लिये हृदय में साहस और बल एकत्र करने की आवश्यकता है। देवसेना गान को जितना प्रिय समझती है जय माला उतना युद्ध को। एक अद्भुत अपार तथा अद्वितीय वीर शिरोमणी बन्धुवर्मा की स्त्रीमें इतना साहस होना भी आवश्यक सा है। दुर्ग का द्वार टूटते ही उसे बन्धुवर्मा का समाचार ज्ञात करने की उत्कण्ठा होती है। वह भय से कायरों की भांति किसी सुरक्षित स्थान में छिप जाना नहीं चाहती बल्कि वीरता पूर्वक रक्षा करने वाली छुरी निकाल लेती है। भीमवर्मासे वह वीरता पूर्वक कह देती है— जाओ 'हम लोगों की चिन्ता न करो'। स्त्री, ब्राह्मण तथा पीड़ित अनाथों की रक्षा में प्राण विसर्जन कर देना वह क्षत्रिय का धर्म समझती है। वह अत्यन्त ओजस्विता पूर्ण शब्दों में भीम से कहती है।

"एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवारसे चमका दो। भैरव के शृङ्गीनाद के समान प्रबल हुँकार से शत्रु-हृदय कम्पा दो। वीर! बढ़ो, गिरो तो मध्यान्ह के सूर्य के समान। आगे पीछे सर्वत्र आलोक और उज्ज्वलता रहे।"

बन्धुवर्मा जब मालव का राज्य स्कन्दगुप्त को सौंप देने का प्रस्ताव करते हैं तो वह स्त्री होने के कारण लोभ से आबद्ध हो कर कहने लगती है—

"परन्तु इसकी क्या आवश्यकता है? उनका इतना बड़ा साम्राज्य है, तब भी क्या मालव ही के बिना काम न चलेगा।" अपना पैतृक राज्य दूसरों के पद दल में इस प्रकार अर्पित करते हुये उसका हृदय काँपता है। बन्धुवर्मा उसकी इस कायरता तथा कृतघ्नता के प्रस्ताव पर सिर झुका लेते हैं। जयमाला तक भी एक विदुषी स्त्री की भाँति करती है। देवसेना से कहती है—

"समष्टि में भी व्यष्टि रहता है। व्यक्तियों से ही जाति बनती हैं। विश्वप्रेम, सर्वभूत हित कामना परम धर्म है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि अपने में प्रेम न हो।"

जब वह भीमवर्मा, देवसेना तथा बन्धुवर्मा तीनोंकी सम्मति देखती है तो कह देती है—

"जब सभी लोगों की ऐसी इच्छा है, तब मुझे क्या", किंतु यह शब्द वह हृदयपर पत्थर रखकर कहती है। स्वतन्त्रता उक्ति यह नहीं कही जासकती है। इस पर बन्धुवर्मा एक सैनिक होने का प्रण लेकर, जयमाला को राज्य सौंपकर वहां से चल देते हैं। इससे अधिक बात एक स्त्री के लिये और क्या हो सकती थी। वह घुटने टेक कर कहने लगती है—

'मालवेश्वर की जय हो ? प्रजा ने अपराध किया है, दण्ड दीजिये। पतिदेव ! आपकी दासी क्षमा मांगती है। मेरी आंखें खुल गईं। आज हमने जो राज्य पाया है, वह विश्व साम्राज्य से भी ऊंचा है— महान है। मेरे स्वामी और ऐसे महान ! धन्य हूँ मैं।"

जयमाला की यह दुर्बलता नारी स्वभाव कहकर क्षमा की जा सकती है। उसके हृदय में विशालता इतनी अवश्य है कि वह शीघ्र बात को समझकर अपनी त्रुटि पर पश्चाताप करे। सिंहासन देते समय अब वह हर्ष स्कन्दगुप्त से कहती है—

"देव ! यह सिंहासन आपका है, मालवेश का इस पर कोई अधिकार नहीं। आर्यवर्त के सम्राट के अतिरिक्त अब दूसरा कोई मालव के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।" देवसेना का गान कितना परिवर्तित कर देता है इसकी व्याख्या जयमाला बड़ी अच्छी करती है।

"तू उदास है कि प्रसन्न, कुछ समझ में नहीं आता ! जब तू गाती है तब तेरे भीतर की रागिनी होती, और जब हसती है तब जैसे विषाद की प्रस्तावना होती है।"

किन्तु प्रसादजी ने हमें एक विषाद खिन्नता अवश्य दी है। दुर्जेय वीर बन्धुवर्मा युद्ध में प्राण दे देते हैं। सच्ची पतिव्रता क्षत्राणी जयमाला यह दुःखद शोक पूर्ण एवँ हृदय विदारक समाचार सुनकर सती हो जाती। वैधव्य दुःख न सहकर वह अग्नि में प्रवेश कर पुनः अपने जीवन धन प्राणेश्वर से संयुक्त हो जाती है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि जयमाला बन्धुवर्मा जैसे वीर के लिये उपयुक्त भार्या थी, केवल उसमें एक न्यूनता थी, वह बन्धुवर्मा की भांति उदार हृदया न थी। इसीके कारण बन्धुवर्मा को इतने कठोर शब्द कहने पड़े—

"तब मैं इस कुटुम्ब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता"। किन्तु वैसे वह वीर क्षत्राणी, पतिव्रता तथा देवी है।

Q. 20 "The destruction and revolution in the Gupta reign was due to Anant Devi". Explain.

Ans. अनन्तदेवी ही कुमारगुप्त की विलास प्रियता का कारण बनकर राज्य के विप्लव तथा आपत्तियों का कारण हुई। सर्वप्रथम उसने ही राज्य की मूल को दुर्बल बनाया। वह प्रवेश करती है, कुमारगुप्त से कहती है—

"नर्तकियों को बुलवाती आ रही हूँ। कुमारमात्य आदि थे, मन्त्रणा में बाधा समझकर, जानबूझ कर देर लगाई। आपको तो देखती हूँ कि अवकाश ही नहीं!"

धातुसेन की असीमित हंसोड़ता पर वह क्रुद्ध होती है। वह अपने पुरगुप्त को राज्य दिलाने के लिये भटार्क तथा प्रपञ्च बुद्धिकी सहायतासे षड़यन्त्र रचती है। उसमेंएक कुटिल विमाता के सारे दुर्गुण हैं। वह स्कन्दगुप्त तथा देवकी को देख भी नहीं सकती। ईर्ष्या की वह पुतली है। अपने सुसज्जित प्रकोष्ठ में बैठी हुई वह अनन्तदेवी रात्रि के द्वितीय पहर में भटार्क के आने की बाट देख रही है। वह अत्यन्त निर्भीक तथा साहस शीला है। क्यों कि वह जानती है कि चूहे के शब्द से शंकित हो

जाने वाले दुर्बल मनुष्यों के लिये उन्नति के-कंटक पूर्ण मार्ग पार करना असम्भव है।

"महत्त्वाकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है"। राजकीय अन्तःपुर की कठोर तथा पुष्पों से भी कोमल मर्यादा को भी एक ओर रखकर वह गुप्त द्वार द्वारा भटार्क को रात्रि के द्वितीय प्रहरमें अन्तपुर में बुला लेती है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये वह निर्भीकता से कार्य करती है। अपनी नियति का पथ वह अपने पैरों चलती है। दूसरों की शिक्षा की उसे आवश्यकता नहीं। स्वयं महादेवी बनने के लिए वह अपनी सौत देवकी को मार्ग का रोड़ा समझकर उसकी हत्या करने का षडयन्त्र रचती है। देवकी के उग्रता से बढ़ते हुये प्रभाव को देखकर उसे पुरगुप्त के भावी जीवन की शङ्का हो जाती है। पुरगुप्त की रक्षा के लिये उसका हृदय विकल तथा चिन्तित रहता है। सम्राट की मति एक सी न देखकर, उन्हें अव्यवस्थित अवस्था में देखकर वह उसकी विलासिता का लाभ उठाना चाहती है। वह स्वयं अपने पति की हत्या कराने के लिए भटार्क को पुष्पमित्रों के युद्ध में भी नहीं जाने देती। महाबलाधिकृत का पद प्राप्त कराकर वह उसे पुरगुप्त के सिंहासन की ऊंचा सीढ़ी बनाना चाहती है।

अनन्तदेवी अपनी कामना पूर्ण करने के लिये बड़ा प्रचण्ड तथा उग्र रूप धारण करती है। वह राजधानी में विलाप तथा मदिरा की धारा के स्थान पर रक्त की धारा बहाने को तत्पर है। कालागुरू के गंध धूम के स्थान पर वह महापिशाची की उज्वल ज्वाला धधकायेगी। वह एक खंडप्रलय उपस्थित करदेना चाहती है। अत्यन्त भयङ्कर प्रपञ्च बुद्धि उसका सहायक है। भटार्क को

भी वह प्रतिश्रुत कर लेती है। भटार्क के जाने पर वह नारी चरित्र दिखाकर एक असहाय अबला के रूप में अश्रुप्रवाह करती है। वह एक अत्यन्त साहसशीला रमणी है जिसके दुर्भेद्य हृदय में विश्व प्रहेलिका का रहस्य बीज है। गुप्त साम्राज्य के भाग्य की वह कुञ्जी है। उसके नेत्रों में काम-पिपासा का संकेत रहता है। अतृप्ति की चञ्चल प्रवंचना उसके कपोलों पर रक्त क्रीड़ा करती है। विलासिता अभी तक उसका पीछा नहीं छोड़ती पति की हत्या कराकर वह देवकी को भी बंदनी बनाती है। शर्वनाग को उसके लिए अपनी ओर फोड़ती हैं। उसके तनिक भी इधर उधर होने पर वह उसे धमकी देती है।

"यदि तू विश्वासघात करेगा तो कुत्तों से नुचवा दिया जायगा" बन्दीगृह में जाकर वह देवकी पर व्यङ्ग के विषैले बाण छोड़ती है। कहती है—"देवकी ! तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। क्यों ? राजसिंहासन लेने की स्पर्धा क्या हुई" बीच में पड़ने वाली रामा को भी स्वयं उसके पति शर्वनाग से मरवाना चाहती है।

"तो पहले इसी का अन्त करो शर्व शीघ्रता करो ! किन्तु स्कदगुप्त के सम्मुख दोषकी भागिनी पाये जाने पर वह दीन बन जाती है, उसका गर्व किरकिरा हो जाता है। वह अपराधकी क्षमा चाहने लगती है। स्कन्द ! फिर भी मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हूँ।

स्कन्दगुप्त उसे चेतावनी देकर क्षमा कर देता है-'अनतदेवी! कुसुमपुर में पुरगुप्तको लेकर चुपचाप बैठी रहो जाओ मैं स्त्रीपर हाथ नहीं उठाता, परन्तु सावधान, विद्रोह की इच्छा न करना नहीं तो क्षमा असंभव है'। क्योंकि उसका पुत्र पुरगुप्त उतना बलवान नहीं है जितना स्कन्दगुप्त, वह अपने निवीर्य, निरीह बालकके कारण लज्जा के गर्त में डूबा जाता है। उसे शोक है

कि वह राजाधिराज कह कर युवराज पुरगुप्त का अभिनन्दन नहीं कर सकती।

अनन्त देवी तीसरी बार भटार्क को युद्ध में विश्वासघात करने का पाठ पढ़ा देती है। वह भटार्क को अपना बनाना चाहती है इसी कारण विजया की ओर उसकी लम्बी तन जाती है। विजया क्रोध में उसे पाप पङ्क में फंसी हुई निर्लज्ज नारी कहने का साहस करती है वह इसपर विजया को पुरगुप्त केसाथ सिंहासन पर बैठाने का लोभ देती है। किन्तु विजया उसे अनन्तदेवी की सन्तान होने के कारण घृणा करती है। वह अपने को बहुत कुछ समझती है विजया की बातों पर उसे क्रोध आ जाता है 'अश्वमेध पराक्रम कुमारगुप्त से बाल सुगन्धित करने के लिये गन्ध चूर्ण जलवाने का उसे घमण्ड है। वह अपनी एक तीखी कोर से गुप्त साम्राज्य को डांवाडोल कर सकती है। वह कूटनीति के कटंकित कानन की दावाग्नि हो स्वयं गर्व शैल शृङ्ग होकर भी दूसरों के गर्व के लिये वज्र बन जाती है। वह प्रलय समुद्र से भी न बुझने वाली आग लगा सकता है।

समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके स्कन्दगुप्त पुनः उसे तथा पुरगुप्त को बन्दी बनाता है और कहता है "मेरा सौतेली माता! इस विजय से आप सुखी होंगी" इस पर अनन्त देवी लज्जा से पृथ्वी में गढ़ कर कहने लगती है—

"क्यों लज्जित करते हो स्कन्द! तुम भी तो मेरे ही पुत्र हो" उसे इन शब्दों को कहते वास्तविक लज्जा नहीं आती एक बार पहले भी स्कन्द से क्षमा प्राप्त करके उसने इसी प्रकार के शब्द कहे थे। किन्तु स्कन्द स्पष्ट कह देता है—

"आह! यही यदि न होती मेरी विमाता ! तो देश की इतनी दुर्दशा न होती।"

इस पर अनन्तदेवी क्षमा याचना करती है—

"मुझे क्षमा करो सम्राट"।

स्कन्दगुप्त अपने सौतेले भाई पुरगुप्त को ही राज्य उत्सर्ग करके दे देता है। तब वह शाँत होती है। वास्तव में अनन्तदेवी ही 'फूले फले गुप्त साम्राज्य की चिनगारी' है उसी के कारण समस्त आपत्तियाँ आई। उसकी कुटिलता हमें सौतेली मां कैकेई की स्मृति दिलादेती है। कैकेई के संबंधमें तो 'गई गिरा मति फेर' वाली बचावट भी थी, किन्तु अनन्तदेवी में वह भी बात नहीं।

Q. 21. Show that 'Devaki' was a real 'Devi'.

Ans कुमारगुप्त की बड़ी रानी, स्कँदगुप्त की माता, मगध की साम्राज्ञी महादेवी देवकी का चरित्र अत्यंत उज्वल तथा देवी जैसे गुणों वाला है। हम उसको अनन्तदेवी की कूट मंत्रणा के कारण बन्दीगृह में पाते हैं। किन्तु वह देवी इस सबको अपना दुर्भाग्य तथा बुरे दिन समझती है। स्वजनों के विरुद्ध होने से कुमार्ग का अवलम्बन करने से तथा उसके साथ असहानुभूति के कारण ही उसे यह दिन दुर्दिन होकर सताता है। अतएव वह स्वयं आत्मसमर्पण तथा सहानुभूति के सत्पथ में विश्वास रखती हुई इस कठोर समय में भगवान की स्निग्ध करुणा का शीतल ध्यान करती है। उसी विपद् भंजन, दुःख निवारण, गजबन्ध-मोचक की सत्ता में विश्वास करती है उसे विश्वास है कि नर्क के असंख्य दुर्दान्तप्रेम और उनके क्रूर पिशाचोंका त्रास भगवान की दयायुक्त दृष्टि से क्षणमात्र में शाँत हो जायगा। प्रलय की लहरें भी शांत हो जावेंगी, ज्वाला की आंधी पर करुणा के मेघ

छा जायेंगे। सुख की ध्वजा फहराने लगेगी। देवकी के बध द्वारा अनन्तदेवी अपनी विष ज्वाला को शांत किया चाहती है। वह सर्वप्रथम उसीसे महाबलिदान का आरम्भ करेगी किन्तु देवकी करुणामय की कृपा के सहारे रामा को समझाकर कहती है—

"शाँत हो रामा ! देवकी अपने रक्त के बदले किसी का रक्त नहीं गिराना चाहती।"

अनन्तदेवी के 'राजसिंहासन लेने की स्पर्धा' का कटाक्ष करने पर वह कह उठती है—

"परमात्मा की कृपा है कि मैं स्वामी के रक्त से कलुषित सिंहासन पर न बैठ सकी"।

उसकी अन्तिम कामना स्कन्द को देखने की है। किन्तु वह हत्यारों से उसकी भी प्रार्थना नहीं करना चाहती। वह स्कन्दगुप्त के लिये भी विश्वम्भर से उसे अपनी अनन्त दया का अभेद्य कवच पहना कर सुरक्षित रखने की प्रार्थना करती है। भक्त के आर्त्तनाद पर नग्नपद धावक भगवान स्कन्द द्वारा ही उसकी रक्षा करते हैं तथा साथ साथ उसकी कामना की पूर्ति भी वह 'आओ मेरे वत्स' कहकर स्कन्द को आलिङ्गन करती है। मालव के सिंहासन पर बैठने के समय स्कन्द के चरण वन्दना करने पर वह आशीर्वाद देती है—

"वत्स ! चिरविजयी हो ! देवता तुम्हारे रक्षक हों। महाराज पुत्र ! इसे आशीर्वाद दीजिये कि गुप्तकुल के गुरुजनों के प्रति यह विनयशील रहे'। उसको अपने इष्टदेव पर अभिमान है तथा उन्हीं दयामय की कृपा से उसके सारे कार्य सफल होते हैं। वह भटार्क से हूणों को परास्त करने गये हुये स्कंद को अपने आनंद

के उत्सव को, आशा के एक मात्र आधार को पूछती है। विद्रोही भटार्क कह देता है—

"क्या कहूँ, कुभा की क्षुब्ध लहरों से पूछो, हिमवान की गल जाने वाली बर्फों से पूछो कि वह कहाँ है ? मैं नहीं………"।

इस पर देवकी अपने नेत्रों के दुलारे को मृत समझ कर यह कहकर सर्वदा को संसार त्याग देती है—

"आह ! गया मेरा स्कन्द !! मेरा प्राण !!!

जिस महादेवी देवकी के नाम पर गुप्त साम्राज्य नत मस्तक होता था आज उसकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिये भी उस समय कोई उपाय न था। राजसम्मान से अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये स्कन्द की अनुपस्थिति में भटार्क और कमला उसके शव को एक ऊँचे स्थान पर रख देते हैं। कनिष्क के स्तूप के समीप उसकी समाधि बनती है। उसकी दुःखद मृत्यु पर स्कन्द—

"मां ! मेरी जननी ! तू भी न रही ! हा !"

कहकर मूर्छित हो जाता है। चेतना होने पर वह "जननी ! तुम्हारी पवित्र स्मृति को प्रणाम" कहकर समाधि के समीप घुटने टेक कर पुष्प चढ़ाता है। देवसेना स्वयं पर्णदत्तके साथ महादेवी की समाधि को परिष्कृत किया करती है। यहीं स्कन्द कौमार व्रत लेता है। यह आदर उस देवी देवकी के उपयुक्त ही है, उसका चरित्र आदि से अन्त तक उज्ज्वल है।

Q. 22. "Possessed of a high sort of moral character Kamla was always pinched at heart by the manners of her son Bhatarka." Examplify.

Ans. भटार्क की जननी कमला एक उच्च आदर्श कीमहिला है। भटार्क की दुश्चरित्रता के कारण वह सदैव दीना, खिन्ना तथा मलीना रहती है। उसका हृदय सदैव इर्षा ज्वाला में जला करता है। वह उस कुटिल पुत्र का अपनाने में लजाती है—

"तू मेरा पुत्र है कि नहीं" ?

भटार्क केवल इसी सत्य के कारण कि वह कमला का पुत्र है समस्त लाँछनों का तिरस्कार करता है। कमला भटार्क जैसे विद्रोही विश्वासघात पुत्र पाने के कलङ्क पूर्ण जीवन से मरना ही श्रेष्ठ समझती है। उसको आशा थी कि उसका पुत्र देशका सेवक होगा, म्लेच्छों से पददलित भारतभूमि का उद्धार करके उसका कलङ्क धो डालेगा, उसका मस्तक ऊंचा करेगा। किन्तु भटार्क ने उसकी सारी आशाओं को विफल कर दिया। यद्यपि वह वीर है, उसका रणनाद वज्रध्वनि के समान शत्रु के कलेजे को कँपा देता है, उसका लोहा भी भारत के क्षत्रिय मानते हैं, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उसकी शक्ति का उचित उपयोग न कर सकने के कारण ही कमला को ग्लानि है। वह देशद्रोही है, राजकुल की शांति का प्रलय मेघ है, कुचक्री, कृतघ्नी तथा विश्वासघाती है। इसी कारण कमला लज्जा के गर्त्तमें डूबी जाती है। वह अब उसे अपना पुत्र नहीं मानती। इसी कारण विजया से कहती है—

'देवी ! यह मेरा पुत्र था'।

महाबलाधिकृत होनेके लालचमें अपने हाथ पैर पाप शृङ्खला में जकड़ देने वाले षड़यन्त्री पुत्र को वह क्या कर अपना कहे—

लज्जा के कारण कमला भटार्क के ऐश्वर्य को त्याग कर महाकाली के मन्दिर में भिक्षा ग्रहण करके जीवन व्यतीत करना चाहती है। इस पर भटार्क लज्जित होकर क्षमा माँगता है।

कमला स्वयं उसे प्रपञ्ची होने के अपराध में दण्डनायक हो समर्पित करना चाहती है। जब वह बन्दी हो जाता है तो कमला कहती है—

"मैं इस कृतघ्न की माता हूं। अच्छा हुआ मैं स्वयं यही विचार कर रही थी।"

स्कन्दगुप्त के साथ क्षमा कर देने पर भी धोखा करने पर वह भटार्क से देवकी के सामने कहती है—

"कृतघ्न! नहीं देखता है, यह वही देवी है, जिन्होंने तेरे नारकीय अपराध को क्षमा किया था। जिन्होंने तुझ से घिनोने कीड़े को मरने से बचाया था"।

भटार्क जब उसे माँ कहता है तो वह उत्तर देती है—

"तू कह सकता है परन्तु मुझे तुझे पुत्र कहने में सङ्कोच होता है। लज्जा से गड़ी जा रही हूँ। जिस जननी की सन्तान जिसका अभागा पुत्र, ऐसा देशद्रोही हो, उसको क्या मुंह दिखाना चाहिए?"

भटार्क इस पर भी नीचता पूर्ण विश्वासघात पूर्ण उत्तर देता है जिससे देवकी प्राण त्याग देती है, इस पर वह एक बार पुनः भटार्क से कहती है—

"देख पिशाच! एक बार अपनी विजय पर प्रसन्नता से खिलखिला ले। नीच! पुण्य प्रतिमा को, स्त्रियों की गरिमा को, धूल में लोटता हुआ देखकर, एक बार हृदय खोलकर हंस ले। हा देवी!"

कमला सुखी घरों में आग लगाने वाले, देश को अनाथ तथा

दुर्दशायुक्त बनाने वाले, नारकीय कीड़े भटार्क को अत्यन्त अपमान पूर्ण वचन कहती है—

पुरगुप्त को सम्राट बनाने वाले, सम्राटों के नियामक भटार्क को वह तुच्छ बता कर कहती है—

"मैंने भूल की सूतिका-ग्रह में ही तेरा गला घोंटकर क्यों न मार डाला। आत्महत्या के अतिरिक्त अब और कोई प्रायश्चित नहीं।

अन्त में हम उसे जय ध्वनि करते तथा पुष्प वर्षा करते पाते हैं।

Q. 23. Rama was a real Rama and a reformer of her greedy husband" Explain the above.

Ans. कादम्ब, कामिनी तथा कांचन के दास सर्वनाग की पत्नि रामा अपने पति को समझाती है। वह दुर्वृत्त मद्यप उसे पर स्त्री समझकर छेड़ता है। उससे पूछती है—

"अच्छा यह तो बताओ, कादम्ब पीना कहाँ से सीखा है? और क्या बकते हो?"

वह उसकी बातों से समझ जाती है कि उसने भी महादेवी के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा है। इस पर रामा वीरता पूर्वक उसे डांटती है—

"ओह! मैं समझ गई! तूने बेच दिया— पिशाच के हाथ तूने अपने को बेच दिया। लोभवश मनुष्य से पशु हो गया! रक्त पिपासु! क्रूर वर्मा मनुष्य! कृतघ्नता की कीच का कीड़ा! नरक दुर्गन्ध! तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूंगी। मेरे

रक्त के प्रत्येक परमाणु में जिसकी कृपा की शक्ति है, जिसके स्नेह का आकर्षण है, उनके प्रतिकूल आचरण"।

इस प्रकार के विद्रोही के विरुद्ध रामा पतिके होनेके विचार को भुला देती है। वह स्वयं ईश्वर के विरुद्ध भी हो सकती है। वह देवकी के स्थान पर स्वयँ प्राण दे देने को उद्यत हो जाती है किन्तु उसकी हत्या न होने देगी। उसका पति उसे सोने तथा मान का लोभ देता है। किन्तु वह कह देती है—

"सोना मैं नहीं चाहती, मान मैं नहीं चाहती, मुझे अपना स्वामी अपने मनुष्य रूप में चाहिये"।

वह इस कारण पति का विरोध करती है कि जब हिंस पशु भी अपने स्वामीका विरोध नहीं करते तो मस्तिष्क रखने वाला मनुष्य ऐसा नीच व्यवहार क्यों करे। वह अपने स्वामी को असत्य प्रतिज्ञाओं से हटाना चाहती है। वह ऐसे स्वामी को पा कर लज्जा के गर्त्त में डूबी जा रही है। कृतज्ञता तथा सेवा धर्म उसे धिक्कार दे रहे हैं। पिशाच का प्रतिनिधित्व ग्रहण करने वाले अपने स्वामी को वह अपनाने में भी वह लज्जा समझती है। वह वीरता तथा निर्भयता के साथ पति से कहती है—

'एक शर्व नहीं, तुम्हारे जैसे सैंकड़ों पिशाच भी यदि जुट कर आवें, तो आज महादेवीका अंग स्पर्श कोई न करसकेगा"।

वह इतनी आगे बढ़ जाती है कि छुरी निकाल कर उसकी हत्या तक करने को तत्पर हो जाती है। इसपर शर्वनाग उसे स्मृति दिलाता है कि वह अपने पतिके विरुद्ध ऐसा आचरण कर रही है तो वह उत्तर देती है।

"नहीं नहीं, तू मेरे स्वामी की नरक निवासिनी प्रेतात्मा है। तेरी हत्या कैसी तू तो कभी का मर चुका है।"

रामा इस विचार के मानने वाली है कि:—
"कायर तो जीवित मरत दिन में बार हजार।
प्राण पखेरू वीर के, उडत एक ही बार॥"
(वियोगी हरि)

जिस समय सर्वनाग देवकी पर खड्ग उठाता है तो रामा सामने आकर खड़ी हो जाती है। शर्वनाग उसे अभागिन कह कर हटाता है किन्तु वह कहती है कि—

"मूर्ख! अभागा कौन है? जो संसारके सब से पवित्र धर्म कृतज्ञता को भूल जाता है, और भूल जाता है कि सब से ऊपर एक अटल अदृष्ट का नियामक सर्वशक्तिमान है, वह या मैं?"

शर्वनाग उसकी लोथ को भी ठुकराने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। इसपर उसकी स्पर्धा तीव्र हो जाती है, स्वामिनी भक्ति जागृत हो उठती है।

"टुकड़े का लोभी! तू सती का अपमान करे, यह तेरी स्पर्धा? तू कीड़ों से भी तुच्छ है। पहले मैं मरूँगी, तब महादेवी।"

इसके पश्चात उस पर इस घटना का इतना आघात पड़ता है कि वह पगली हो जाती है, वह स्कन्द को देखकर कहने लगती है—

"लुटेरा है तू भी! क्या लेगा, मेरी सूखी हड्डियाँ? तेरे दाँतों से टूटेंगी! देख तो— "

सात्विक हृदयपर जब इस प्रकार का कोई आघात पड़ता है तो वह बुद्धि को नष्टकर डालता है। रामा पागलपनमें भी उन्हीं विचारों पर प्रकाश डालती है।

"मैं रामा हूँ ! हा, जिसकी सन्तान को हूणों ने पीस डाला। मेरी ! मेरी सन्तान ! इन अभागों की सी नहीं थी। वह तो तलवार की धार पर पैर फैला कर सोना जानती थी। धधकती हुई ज्वाला में हंसते हुये कूद पडती थीं। वही स्कंद रमणियों का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धों का आश्रय और आर्यवर्त्त की छत्रछाया, नहीं भ्रम हुआ ! तुम निष्प्रभ, निस्तेज उसी से मलिन चित्र से तुम कौन हो ?"

उसका अन्तिम दर्शन हमें सबके साथ पञ्चम अङ्क में होता है जहाँ सब मिलकर जयनाद करते हैं तथा स्कन्द की अध्यक्षता में सेना संचालन करने पर्णदत्त पर पुष्पों की वर्षा करते हैं। रामा इस हर्ष से वञ्चित नहीं की जाती।

Q. 24" Malini is no better than the imagination itself of the poet Matra Gupta, her husband" Criticise the above

Ans. मातृगुप्त की प्रणयिनी मालिनी का जीवन एक कल्पना है। कवि की कल्पना जिस प्रकार साकार नहीं होती उसी प्रकार मालिनी का कोई निश्चित रूप नहीं, उसका जीवन एक पहेली सा है। वह केवल नाट के अन्त में हमारे सम्मुख आती है। मातृगुप्त उसका परिचय हमें कवित्व भाषा में देता है—

"उस हिमालय के ऊपर प्रभात सूर्य की सुनहरी प्रभा से आलोकित बर्फ का महल था उसी से नवनीत की पुतली झाँक कर विश्व को देखती थी।"

उसका वर्णन करने में कल्पना की भाषा के पङ्ख गिर जाते हैं मौन नीड़ में निवास करने योग्यही उसकी मूर्ति है। वह वेश्या वृति धारण कर लेती है। उसका धन चुरा लिया जाता है। जिसकी सूचना न्यायाधिकरण में की जाती है। मातृगुप्त इन दिनों उस प्रदेश का अधिपति है। वह उसका नाम सुनकर कुछ सोचता है और मालिनी को अवगुंठन हटाने की आज्ञा देता है। मातृगुप्त का भ्रम उसका मुख देखकर निवारण हो जाता है। मालिनी स्वय बड़ी लज्जित है वह उसे अपना मुख नहीं दिखा सकती। इसी कारण वह लज्जा से मुख छिपाती है। इस पर मातृगुप्त कहता है—

"तुम ! नहीं मेरी मालिनी ! मेरे हृदय की आराध्य देवता वेश्या ! असंभव। परन्तु नहीं, वही है मुख ! यद्यपि विलास ने उस पर अपनी मालिनी छाया डालदी है। उस पर अपने अभिशाप की छाप लगादी है। पर तुम वही हो"। मालिनी इन शब्दों पर अपने दुर्दैव को कोसती है। मातृगुप्त आजतक उसकी मूर्ति की पूजा करता रहा। उसकी पवित्र स्मृति को कङ्गाल की निधि की भांति छिपाये रहा। वह उसके भाग्याकाश के मन्दिर का द्वार खोलकर उनींदी उषा के सदृश आई थी। उसके भिखारी संसार पर मालिनी ने सुवर्ण की वर्षा कर दी थी। किन्तु उसी मालिनी को, नन्दन-कुसुम को, सोने के लिये सुगन्ध बेचते देख मातृगुप्त शोकातुर हो गया। वह राज्य कोष से उसका धन दिला देता है। मालिनी उसके चरणों पर गिर कर क्षमा माँगती है। किन्तु मातृगुप्त कह देता है—

"मैं इतना दृढ़ नहीं हूँ मालिनी ! कि तुम्हें इस अपराध के कारण भूल जाऊ । पर वह स्मृति दूसरे प्रकार की होगी । उसमें ज्वाला न होगी । धुआं उठेगा और तुम्हारी मूर्ति धुँधली होकर सामने आवेगी । जाओ" ।

मालिनी का फिर दर्शन नहीं होता । नाटक में उसकी केवल एक झांकी सी प्रतीत होती है । उसका नाटक की मुख्य घटना से भी कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है ।
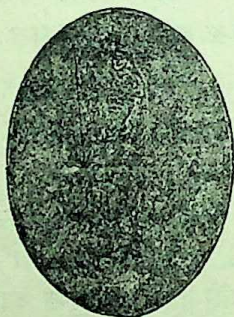
GENERAL QUESTIONS ON THE DRAMA

Q. 25 "What are, in youre opinion, the essentials of drama to be staged? State whether Skunda Gupta (स्कन्दगुप्त) can be staged

Ans. नाटकमें अभिनेयता का गुण होना अत्यन्त आवश्यक है। नाटक दृश्य काव्य है। यदि वह केवल श्रव्य ही रहा तो उस का नाटक होना व्यर्थ है। अभिनय होने के लिये नाटक में कई बातें देखी जाती हैं। सर्व प्रथम यह देखना चाहिये कि नाटक की लम्बाई कितनी है। नाटक इतना बड़ा होना चाहिए जो तीन या चार घण्टे में समाप्त किया जा सके स्कन्दगुप्त पांच अङ्कों का नाटक है। उसको खेलने के लिये कम से कम पाँच घण्टे चाहियें। यदि उसमें से बौद्ध तथा ब्राह्मणों वाला व्यर्थ का झगड़ा तथा अन्य एक दो निरर्थक कठिन उक्तियाँ निकाल दी जायं तो उसका सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है।

दूसरी बात नाटक की भाषा है। यदि नाटक की भाषा क्लिष्ट है तो न तो दर्शकगण ही उसको समझकर लाभ उठा सकेंगे और न पात्र ही उसको ठीक २ समझकर वैसा भाव प्रदर्शित कर सकेंगे जैसा कि आवश्यक है। स्कन्दगुप्त की भाषा कई स्थलों पर कठिन है। एकदम यह कह बैठना कि उसकी भाषा अत्यन्त क्लिष्ट है, उचित नहीं; स्कन्दगुप्त जिस उच्च कोटि का नाटक है वैसी ही उसकी भाषा भी है। कहीं कहीं तो उसमें इतने सरल शब्द हैं कि यह जी चाहने लगता है कि इनके स्थान पर हिन्दी के अन्य शब्द उठा कर रख दें। किन्तु मातृगुप्त की कवित्वमय उक्तियाँ, प्रपञ्च बुद्धि तथा बौद्ध भिक्षुकों के झगड़े आदि में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह वास्तव में क्लिष्ट है। जिसे दर्शक मण्डली के दो चार ही व्यक्ति समझ सकते हैं।

यद्यपि प्रसाद जी ने भाव के अनुकूल भाषा को अपनाने का प्रयास किया है। गम्भीर भाव साधारण भाषा में व्यक्त करना ठीक नहीं, किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से वह अवश्य कुछ क्लिष्ट हो जाता है। दर्शक मण्डली गायनों को अधिक पसन्द करती हैं। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर अब कुछ मनुष्य इस विचार के भी हो गये हैं कि बार बार गायन नहीं होना चाहिए। किन्तु फिरभी जिस ढङ्ग के गाने अभिनेय नाटकों में होने चाहियें, वैसे स्कन्दगुप्त के नहीं हैं। उनके नाटकीय पात्रों के चरित्र जितने गूढ़ हैं उतने ही गीतों के भाव भी गहन हैं। वह जनता मण्डली की बुद्धि में नहीं बैठ सकते।

रङ्गमञ्च केवल विनोद की सामग्री ही नहीं, साहित्य की कसौटी तथा प्रकृति का मनोरञ्जक उपयोगी साधन भी है। कविता तथा गद्यस्थलों की परिमार्जितता, उसके रसों का प्रदर्शन केवल पढ़ने की अपेक्षा रङ्गमंच पर अच्छी प्रकार समझे जा सकते हैं। नाटक का सौंदर्य जैसा मञ्च पर निखरता है वैसा अन्य स्थानों पर नहीं।

स्कन्दगुप्त के अभिनय के लिये बाह्य रङ्गमञ्च के स्थान पर आन्तरिक रङ्गमञ्च भी चाहिये। दर्शकों की सामूहिक मनोवृत्ति ही उसके अभिनय साफल्य की कसौटी हो सकती है। अधिकाँश दर्शकों को जिस समय तक साहित्यिक रुचि न हो उस समय तक स्कन्दगुप्त रङ्गमञ्च पर नहीं लाया जा सकता।

स्कन्दगुप्त एक उच्च कोटि का साहित्यिक नाटक है। वह पाठ्य पुस्तक के रूप में उच्च कक्षाओं में स्थान प्राप्त कर सकता है। नाटकका प्रथम उद्देश्य उसकी अभिनेयता है। दूसरे क्षण वह साहित्य की उज्ज्वल रत्नराशि है। बोल चाल की भाषा साहित्य भाषा से भिन्न होती है। जब नाटक के पात्र साहित्यिक भाषा का प्रयोग करने लगते हैं तब वह अनाटकीय हो जाते हैं। जो,

वस्तु मञ्च पर कही जाती है वह साहित्य नहीं और साहित्य जो मच पर लाया जाता है वह नाटकीय नहीं। नाटक बोलने और अभिनय करनेकी वस्तु है। इसके विरुद्ध साहित्य अध्ययन तथा मनन करने की वस्तु है। यद्यपि नाटक साहित्य का एक ही अङ्ग है। किन्तु दृश्य के अन्तर्गत है श्रव्य के नहीं। यह भी न समझ बैठना चाहिये कि जो नाटक अभिनेय है वह साहित्यक हो नहीं सकता है। नाटक अभिनय के उपयुक्त होते हुये साहित्यक भी हो सकता। किन्तु ध्यान यह रखना चाहिये कि पाठकों की रुचि भी कोई वस्तु है।

आजकल पंडित राधेश्याम तथा नारायण प्रसाद जी बेताब के नाटकों में ही अभिनय का ध्यान रक्खा जाता है। दूसरे नाटकों में तो साहित्य की लड़ियाँ सजाई जाती हैं। स्कन्दगुप्त इसी दूसरे प्रकार का नाटक है। उसकी रचना इस प्रकार क है मानों उसके समस्त दर्शक दार्शनिक अथवा कवि हैं। यद्यपि स्कन्द में पात्रों का सजीव चरित्र चित्रण है। जीवन का सच्चा चरित्र प्रदर्शित किया गया है। उसमें माननीय भावों का स्पष्टी करण एवँ मनोविज्ञान की स्पष्ट मूर्ति का भी हमें दर्शन होता है। किन्तु उसमें अभिनयता नहीं।

प्रसाद जी का यह नाटक उनकी उच्च साहित्यक मन वृत्ति का परिचायक है। उनसे इससे सरल नाटक रचनेकी आशा भी नहीं करनी चाहिये। उनकी लेखनी इससे सरल नहीं हो सकती उन्हें नाटकों को अभिनेय बनाने उतना ध्यान नहीं जितना उन्हें साहित्यक बनाने का।

Q. 25 "What departure has Jai Shanker Prasad made in the field of dramatic literature"?

Ans. श्रीयुत जयशंकर प्रसाद जी ने नाटकीय क्षेत्र में एक नवीन युग उपस्थित कर दिया है। उन्होंने इस क्षेत्र में प्राचीन

रूढ़ियों का बहिष्कार किया है। वह केवल अनुवादक नहीं हैं बल्कि शुद्ध साहित्यक मौलिक नाटकों रचयिता हैं। अतएव उन्हों ने संस्कृत नाटकों की पद्धति से अपनायी हुइ नान्दी का भी लोप कर दिया। सँस्कृत नाटकों के ढङ्गपर लिखे हुये हिन्दी के समस्त नाटकों में— राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुन्तला' आदि में नाटकीय घटना से पूर्व आशीर्वादयुक्त नान्दी होती है। अन्त में जो भरत वाक्य होता है उसका भी बहिष्कार प्रसादजी ने कर दिया है।

दूसरी नवीनता है उनके नाटकों की भाषा। प्रायः नाटकों में समस्त पात्रों से एक ही साँचे में ढली भाषा बुलवाइ जाती है। उदाहरण स्वरूप बा० राधाकृष्ण जी के महाराणा प्रताप' नाटक में एक वृद्धा द्वारा ऐसी फारसी बघरवाई जाती है कि उसको उद्धृत किये बिना नहीं रहा जाता—

'अच्छा, हजूर अबइधर मुलाहिजा फरमावें। हिन्दी नाटकों में अभी तक यह भी प्रश्न है जिन पात्रों की मातृ भाषा हिन्दी नहीं वे किस भाषा में बोलें, मुसलमान पात्र शुद्ध हिन्दी बोलें, या शुद्ध उर्दू। हमारी सम्मतिमें उन्हें मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। 'उन्हें हिन्दुस्तानी भाषाका प्रयोग करना चहिये प्रसादजी इनसब बातोंसे विरक्त हैं। वह पात्रोंसे शुद्ध साहित्यक भाषा का प्रयोग कराते हैं। वह घृत के स्थान पर 'तनूनय' तथा गम के स्थानपर 'ऊष्ण' लिखेंगे। कहीं २ तो उनकी भाषा इतनी उच्च होती है कि बड़े २ साहित्य रत्नों तथा हिन्दी कोविदों को नत मस्तक होना पड़ता है। विशारद गण लज्जा से अवनत मुख हो जाते हैं।

नाटक कम्पनियों के नाटकों की अत्यन्त वृद्धि देखकर कतिपय साहित्यकों के हृदयमें एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ। ऐसे समय में प्रसाद जी भी नाटकीसे क्षेत्र में अवतीर्ण हुये। उनके सामने इस समय तीन भाषाओं के नाटक थे। पहिले संस्कृत के

अनुवादिक नाटक, दूसरे बंगला के अनुदित नाटक तथा तीसरे हिन्दी के रंगमंच वाले नाटक। सर्व प्रथम प्रसाद जी ने संस्कृत के हिन्दी अनुवादों की शैली वाले नाटकों के ढङ्ग पर मौलिक रचना आरम्भ की। इन्हों ने भारतेन्दु जी को ही पहले अपना आदर्श बनाया। यह 'सज्जन' नामक नाटक लेकर जनता के सम्मुख उपस्थित हुये।

फिर प्रसादजी की दृष्टि बंगला और अङ्गरेजी के नाटकों की ओर गई बंगलामें इन्हें तीन प्रकार के नाटक मिले। गीति नाटक कल्पित तथा ऐतिहासिक नाटक। गीति नाटक के रूप में इन्होंने 'करुणालय' प्रस्तुत किया। यहां उन्होंने अनुकाँत पद्योंका प्रयोग किया है। द्विजेन्द्रलालराय के नाटकों के ऐतिहासिक ढङ्ग भी इन्होंने अपनाया। जिसके फलस्वरूप 'अजात शत्रु' 'स्कन्दगुप्त' तथा 'चन्द्रगुप्त' नामक नाटकों की रचना हुई। इन्होंने अङ्गरेजी ढङ्ग पर भी नया मार्ग प्रस्तुत किया। हिन्दी में अभी तक 'मेवाड़ पतन' 'मुद्राराक्षस' तथा 'महाराणा प्रताप' तीन ऐतिहासिक नाटक थे। इस नवीन क्षेत्र में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। अतएव चित्तवृत्ति भी इधर ही जम गई। प्राचीन इतिहास को अपने नाटकों द्वारा पुनर्जीवित करने में इनका उपकार अद्वितीय है। इस क्षेत्रमें इन्होंने 'अजातशत्रु' 'जनमेजय' का 'नागयज्ञ' विशाख 'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' रचे तथा भावनात्मक नाटकों में 'कामना' मानसिक वृत्तियों को मूर्तिमान बनाकर अपनी नई भावनाओं की कल्पना से इस नाटक की रचना की।

किन्तु ऐतिहासिक नाटकों में इनकी जो रुचि विशेष है तथा जैसी उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है उसके सामने यह नाटक सफल होते हुये भी उनकी भावुकता और नाटकीय क्षेत्र में कला का द्योतक उतना नहीं।

भारतीय नाटकों जैसा चरित्र चित्रण भी उनके नाटकों में

प्राप्त होता है। भाषा उनकी इतनी साहित्यक होती है जितनी अब तक अन्य नाटकों की नहीं होती थी। प्रसादजी के विदूषकों का हास्य अशिष्ट नहीं होता रसिक भारतेन्दु की भाँति उनका विनोद अश्लील भी नहीं होता। वह अधिकतर समासयुक्त पदावली का प्रयोग करते हैं। जैसे साभिप्राय, क्रिया कलाप, करुण कामना। सूची भेद्य।

प्रसादजी के नाटकों में जैसा स्कन्दगुप्त से स्पष्ट है जीवन का विश्लेषण रहता है। उनके नाटकोंमें वेदना की तीव्रता तथा टीस रहती है।

हिंदी साहित्य इतिहासका पुनर्जीवन करनेमें उनका आभारी है।

Q. 27 "State whether Skund Gupta is a tragedy or comedy. ?

Ans भारतीय नाट्य शास्त्रमें वियोगान्त नाटकों का अभाव है। प्रसाद जी इस नियम विधान से परिचित थे। इसी कारण प्रसादजी स्कन्दगुप्तको वियोग विषाद अथवा दुखमें समाप्त नकर सके। यही कारण है कि उन्होंने स्कन्दगुप्त में दोनों का मिश्रण किया है ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद जी अपने नाटक को वियोगान्त ही बनाना चाहते थे। वह यहां भी एक नवीनता उत्पन्न करना चाहते थे। परन्तु सहसा ऐसा न करके उन्होंने विषादान्त तथा प्रसादान्त दोनोंका गङ्गा यमुनी मिश्रणकर दिया नाटक की घटनाए अन्तद्वन्द्व से युक्त तथा मरणोन्मुख होती गई हैं अन्त में नाटक को विषादान्तता के दोष से बचाने के लिये सर्वप्रकार का सुखान्त बनाकर उसकी विषादान्तता को शब्द जालों द्वारा त्रिवेणी में सरस्वती की भांति लुप्त कर दिया है।

नाटक के अधिकांश पात्रों की मृत्यु हो जाती है। कुमारगुप्त गोविन्दगुप्त, बन्धुवर्मा, पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार तथा महादण्डनायक की मृत्यु हो जाती है। स्त्री पात्रों में महादेवी देवकी स्वर्ग

यात्रा करती है। देवी रामा पगली हो जाती है। इसके अतिरिक्त देश पर हूणों तथा शकों के आक्रमण होते हैं। अनन्तदेवी तथा पुरगुप्तराज के विपक्ष में विद्रोह करते रहते हैं। भटार्क, प्रपंच-बुद्धि, शर्वनाग विश्वासघात करते हैं। नाटक के जिन पात्रों के साथ हमारी सहानुभूति है वह सब कष्ट भोगते हैं। पर्णदत्त अत्यन्त विपत्ति पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। वह रक्त के आंसू रोता है। स्वयं स्कन्दगुप्त उसकी दशा पर कहता है—

"वृद्ध पर्णदत्त, सच्चा स्वामिभक्त पर्णदत्त! तात!! तुम्हारी यह दशा!!!" नाटक का नायक स्कन्दगुप्त स्वयँ आदि से अन्त तक एक विपत्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। वह अपने प्रेम में सफल नहीं होता। देवसेना समाधि पर एक साधारणपने का जीवन व्यतीत करतीहै. विजया किधर कीभीनहीं रहती। नाटक का नायक आजन्म अविवाहित रहता है विजया वा देवसेना दोनों में से कोई भी नायिका नहीं बन पाती।

स्कन्दगुप्त राज्य पाकरभी दूसरोंके प्रति, नहीं नहीं विद्रोहियों के प्रति राज्य का उत्सर्ग कर देता है। जिन दुष्ट पात्रों को जैसा दण्ड मिलना चाहिये वैसा नहीं मिलता।

पाठक वृन्द अपने हृदय को टटोलता है, खोजता है किन्तु शान्ति नहीं पाता। हृदय रह रह कर कहता है कि जब स्वामी भक्त तथा वीर पात्रों की अधिकाँश मात्रा में मृत्यु हो गई, शेष दुख पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। स्ययं नायक विवाहित नहीं होता, राज्य नहीं भोगता, पगली रामा पतिके चरित्र खिन्न रहती है। कमला भटार्क सा नीच पुत्र पाकर शोकातुर रहती है, देवकी की स्वर्ग आत्मा हमारे अश्रुओं को बन्द नहीं होने देती, अनन्त देवी किये का फल न भोग कर राज्य माता बनती है। जयमाला सी पतिपरायण पति वियोग में सती हो जाती है, देवसेना समाधि परिष्कृत करती रह जाती है। नाटक का कोई भी पात्र

जब सुखित नहीं रहता तो भला नाटक की सुखान्तता कैसी।

हमारी सम्मति में तो पाठकों का हृदय देवसेना के साथ अपने हृदय के भावों को कहता रह जाता है—

"हृदय की कोमल कल्पना! सो जा! जीवन में जिसकी सँभावना नहीं, जिसे द्वार पर आये हुये लौटा दिया था, उसके लिये पुकार मचाना क्या तेरे लिये कोई अच्छी बात है? आज जीवनके भावी सुखआशा और आकाँक्षा सबसे विदा लेती हूँ।"

नायक के प्रति भी हमारे यही शब्द निकलते हैं—

"हत भाग्य स्कन्दगुप्त, अकेला स्कन्द ओह!!!"

प्रसाद जी ने केवल भारतीय नाटकों के भय से नाटक को सुखान्त नहीं शान्तमय सा करने का प्रयत्न किया।

Q. 23 "State brieflv the merits and demerits of the drama of Skund Gupta" How far Prasad is a dramatist?

Ans. प्रसादजी ने स्कन्दगुप्त में ऐसी सामग्री प्रस्तुत की है जिसके द्वारा एक सुन्दर तथा सुपाठ्य नाटक की रचना की जा सकती है। प्रसादजी प्रयास यद्यपि स्तुत्य है किन्तु नाटक के कुछ अंश विक्षिप्त अवस्था में हैं। मातृगुप्त की भावनात्मक उक्तियाँ तथा बौद्ध और ब्राह्मणों के झगड़े ऐसे हैं कि उनसे नाटकीय वस्तु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। घटनायें बिशृङ्खल तथा अवकासित सी रह गई हैं। पृष्ठ १२३ तथा १२७ की निरर्थक बातें व्यर्थ ही नाटक के कलेवर को बढ़ाने का नाम पर ठूंसा ठूंस हो जाने से कब्ज पैदा करती हैं। कथावस्तु की पुष्टि इससे नहीं होती।

स्कन्दगुप्त का प्रथम अङ्क पात्रों के परिचय के अतिरिक्त हमें संघर्ष पूर्ण परिस्थियों से अवगत करता है। इन्हींमें यथार्थ वस्तु का आरम्भ होता है। किन्तु यह अङ्क आवश्यकता से अधिक

बढ़ाया गया है। आरम्भ के आठ नौ पृष्ठ केवल नायकको उसके अधिकारों का मान कराने के लिये लिखे गये हैं। साम्राज्य की स्थिति डावाँडोल है। पुष्यमित्रों से युद्ध हो रहा है, शक अपना सिर उठा रहे। तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान हमें इसी स्थान पर होता है नायक को आवश्यकता से अधिक घबराया हुवा दिखाया गया है। उस वीर के मुख से यह शब्द— "आह! मैं वही स्कन्द अकेला निस्सहाय" अच्छे नहीं लगते। नायक को शोभा नहीं देते।

कहीं कहीं घटनाओं का पता भी नहीं चलता। देवसेना की रक्षा करने के लिये नेपथ्य में शब्द होता है, स्कन्द खड्ग लेकर जाता है। पर्णदत्त न जाने कहां से आकर उसकी रक्षा कर लेता है। मातृगुप्त इतना बड़ा कवि होते हुये भी एक भूखे भिखारी सा दिखाया गया है। पृथ्वीसेन, प्रतिहार तथा महानायक स्वामी भक्त होते हुये भी आततायियों को मारकर नहीं मरते वह उन पर आक्रमण भी नहीं करते स्वयंही छुरी मारकर मर जाते हैं। मरना ही था तो लड़ते हुये प्राणदेते स्वर्ग प्राप्तकरते। उनका इस प्रकार प्राण दे देना कुछ अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है।

प्रसादजी का मुद्गल पण्डितोंकी भांति प्रणाम करके वार्तालाप करता है। अनन्तदेवी 'अपनी नियती का पथ स्वयं पैरों चलने पर भी' दूसरों की दया के सहारे रही। भटार्क एक स्थान पर तो कहता है—

"मुझे अपनेही बाहुबलसे महाबलाधिकृतका पद मिला है।"

अन्य स्थान पर वह कहने लगता है—

"पृथ्वीसेनके विरोध करनेपर भी आपकी कृपासे मुझे महाबलाधिकृत का पद मिला है। मैं कृतघ्न नहीं हूँ महादेवी?"

उनके पात्रों में स्थिरता नहीं है। वह सदैव दुविधा में फंसे रहते हैं।

अभिनय प्रधान नाटकों में गति या व्यापार की उपेक्षा नहीं की जाती इसपर भी कुछ क्लिष्ट भाषा होने के कारण उनके नाटक अभिनेय होगये हैं। हमें रह २ कर उनकी साहित्यक भाषा तथा भावात्मकस्थल उनके कविरूपके दर्शन कराते हैं। वह पहले कवि हैं उसके पश्चात नाटककार। यही कारण है कि कहीं कहीं भाषा दुसह हो जाती है। काव्य प्रेरणा से अधिकाधिक वशीभूत होकर वह गद्य में भी कविता आने लगे है। उसके साथ ही जहाँ यह चेतना हुई कि यह तो गद्य है वहीं पर विकट कल्पना प्रसूत अलङ्कारों की योजना जटिलहो गई। गद्यकी कठिनता का दूसरा कारण भावोंकी दार्शनिकता है। तीसरा कारण भाषाकी वर्तमान तत्समता है।

जहां वाक्य अपेक्षा कृत लम्बे होगये हैं वहां पाठक विह्वल और भाव ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। 'सावधान' का अधिक-प्रयोग किया है जिससे कृत्रिमता सी आ गई है। नायक को फल प्राप्ति नहीं होती वह सदैव भूला भटका सा रहता है। वह 'प्रकृति का अनुचर तथा नियति का दास' बना रहता है। प्रसाद जी के पात्र किसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर सांसारिक संघर्ष में प्रविष्ठ होते हैं किन्तु उसे प्राप्त न करके भी किसी न किसी प्रकार शांति प्रदान कर दिये जाते हैं। यही दशा पर्णदत्त देवसेना तथा स्वयं नायक स्कन्द की होती है। इस सिद्धि के लिये वह अपने नाटकों में प्रभावशाली बौद्ध महात्माओं कोअग्र स्थान में रख देते हैं। राज्य में उनका पूर्ण प्रभाव प्रदर्शित किया जाता है। नाटक लिखने का उद्देश्य केवल बौद्धमत का प्रचार प्रतीत होता है। इनके नाटकों में निराशावात ओत प्रोत रहता है। अशाँति, तितिक्षा अथवा वैराग्य इन तीनों में से एक न एक का प्रभाव अवश्य उनके पात्रों पर पड़ता है।

राज्य वैभव से विरक्तसा, उसे गले पड़ी वस्तु समझना अथवा असंतुष्टता इनके राजकीय पात्रों में रहती है। स्कन्दगुप्त साम्राज्य के उद्धार को अपना कर्तव्य समझकर कर्मयुद्ध में सन्नद्ध होता है किन्तु अपने को सामान्य सैनिक समझकर वह अपने भावी सुख की कामना की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करता। अधिकार सुख को वह मादक और सारहीन समझ बैठता है।

स्कन्दगुप्त में देवसेना तथा विजया में स्त्रियों की वृत्ति वाली तितिक्षा तथा सेवावृत्ति रहती है। उन्हें जीवन की निराशाओं से अन्त में विराग होता है। कहीं कहीं यह वैराग्य की उद्भूति-भाग्यवाद की भावना से अथवा किसी पुरुष के व्यक्तित्व केप्रभाव से होती है। उनके पात्रों का चरित्र उस समय तक शुद्ध नहीं होता जिस समय तक किसी उच्चात्मा से उनका सम्पर्क न हो। भटार्क, पुरगुप्त तथा अनन्तदेवी इसी कोटि के पात्र हैं। इस प्रकार का 'आदर्शवाद' प्रसाद जी के सभी नाटकों में रहता है।

स्कन्दगुप्त नाटक में वर्तमान सामाजिक तथा जातीयअवस्था चित्रित की गई है। पर्णदत कहता है—

"अन्न पर स्वत्व है भूखों का और धन पर स्वत्व है देश-वासियों का"।

स्कन्दगुप्त स्वयं भी जातीयता और देशप्रेम की मूर्ति है। देश हित बलिदान कर देने वालों का वह एक उज्ज्वल आदर्श है। आर्य भूमि का दस्युओं, लुटेरों तथा आततायियों से उद्धार करना ही उसका जीवन व्रत है। बन्धुवर्मा का देश प्रेम भी कम उज्वल नहीं है। मातृगुप्त के साथ हम 'हमारा प्यारा भारतवर्ष' गाते हैं। स्कन्दगुप्त सर्व श्रेष्ठ जातीय नाटक है। भारतीय स्वतन्त्र युद्ध का वह एक उज्ज्वल अङ्ग है, तथा रहेगा।

प्रसाद जी के नाटकों को छायावादी नहीं कहा जा सकता। उनमें जटिलता है किन्तु अस्पष्टता नहीं है। स्कन्दगुप्त के विषय में स्वयं प्रसाद जी ने कहा है—

"देवसेना और जयमाला वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों हो सकती हैं, विजया, कमला, रामा और मालिनी जैसी स्त्रियाँ होनी संभव हैं किन्तु यह तब भी कल्पित है। पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहां तक संभव हो सकी है नहीं होने दी गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्बन लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक करने के लिये"।

प्रसाद जी ने नाट्य कर्म को उतना दृष्टि में नहीं रक्खा जितना इतिहास के पुनरुद्धार को।

मुख्य पात्रों की अधिकता तथा चरित्र विकाश के कारण भी नाटक का कलेवर बढ़ गया है। कुछ दृश्य व्यापार विहीन भी हो गये हैं। पहला दृश्य तो इतिहास का परिच्छेद ही बन गया है। उसमें मनोरञ्जन होना तो एक ओर रहा स्मरण शक्ति की अधिक आवश्यकता रहती है। कथानक की दीर्घता के कारण स्मरण शक्ति को कई स्थलों पर सचेत करना पड़ता है। जहां कुछ पात्रों में सादृश्यता है वहां एक दूसरे के विरोधी भी है समानता तथा भिन्नता दोनों साथ साथ चली हैं मुद्गल का हास्य सामान्य रूप से अच्छा है। उसकी उक्तियों में कहीं २ विदग्धता रही है। प्रसाद भी अद्भुतता के साथ कुतुहल तथा आनन्द का मिश्रण कर देते हैं। हम अपार्थिव देवलोक का सा अनुभव करने लगते हैं। उनके पात्र हृदय की पूरी भावनाओं का उद्धार किये बिना नहीं ठहरते। इसी कारण उनकी स्वगतोक्तियाँ लम्बी होती हैं। उनके राजकीय पात्रों को परकोष्ट तथा साधारण पात्रों को पथके अतिरिक्त अन्य स्थान ही रहने को नहीं मिलता। जब देखो वहीं पाते हैं।

अपने पात्रों को कठिन परिस्थिति में डालकर वह उसके चरित्र को पूर्ण रूप से अवगत कराते हैं। किन्तु जिस सुन्दरता से चरित्र का विकाश होता है उतना अन्त में परिचय सुस्पष्ट नहीं मिलता। भटार्क जैसे पात्र दुर्बलता में अधिक गिर जाते हैं स्कन्दगुप्त को देखते ही हूणों का भाग जाना अस्वाभाविक है। इतने अत्याचारी तथा बलवान होते हुये भी उनका इतनी कायरता से भाग जाना खिलवाड़ सा लगता है।

प्रसाद जी निस्संदेह भाषा में मौलिकता का आरम्भ करने वाले हैं। इसके साथ उनकी कृतियाँ महत्व पूर्ण तथा उत्कृष्ट हैं। इनके नाटक साहित्य की स्थायी सामग्री हैं। नवीन युग के विधायक हैं। इनके नाटकों में वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान पतन तथा संघर्ष है। उनमें अन्तर्द्वन्द्व तथा बाह्य द्वन्द्व दोनों रहते हैं। उनसे लेखक की विद्वता का पूर्ण परिचय मिलता है। हिन्दी संसार की भावी शैली के वह विधायक है। विचारों कथानक तथा लक्ष्य की दृष्टि से हिन्दी में ऐसी रचना अभी तक नहीं हुई।

केवल अभिनेयता ही खटकने वाली है। भाषा की कठिनता भी कुछ ऐसी बात नहीं। हम प्रसाद जी को एक सफल नाटककार तथा स्कन्दगुप्त को एक उच्च कक्षाओं के कोर्स के उपयुक्त सफल नाटक कह सकते हैं।

Q. 29 What place would you assign to Jai-Shanker Prasad amongst dramatists? Why?

Ans. यहाँ हमें नाट्यशास्त्र का पूरा विवरण नहीं देना है। परन्तु इतना अवश्य जानना है कि प्रसाद जी से पूर्व ऐतिहासिक नाटकों का जन्म न था। केवल 'मेवाड़ पतन', 'महाराणा प्रताप' आदि दो या तीन ही नाटक थे। प्रसाद जी ने अब तक आठ या

दस नाटक लिखे हैं। उन्होंने प्राचीन इतिहास का अच्छा अध्ययन किया है। प्राचीन भारतीय समाज के भूले हुए चित्रों का दिखाने में उनकी योग्यता सराहनीय है। देश और काल के उपयुक्त अपने कथानकों का निर्माण करना प्रसाद जी की कुशलता है। वह अपने हृदय की मानसिक वृत्तियोंको ही पात्रों का स्वरूप दे सकते हैं। उनके नाटकोंमें सिद्धान्तों को अग्रस्थान दिया गया है। किन्तु कथोपकथन में उनके पात्र दार्शनिक विचारों के विश्लेषण में फंस जाते हैं जिससे नाटकीय प्रभाव कम हो जाता है।

आधुनिक नाटककारों में प्रसाद जी का उच्च प्राप्तस्थान है। नाटकीय क्षेत्र में उनकी रचनायें बड़े महत्व की हैं। अब तक के नाटककारों में उन्हीं को सर्व श्रेष्ठ मानना पड़ता है।

उनके नाटकों में अधिक खटकने वाली दो बातें हैं— उनकी रङ्गमंच पर खेले जाने की अनुपयुक्तता तथा सांसारिक बातों में एक पक्षीय ध्येय। जीवन में सभी कुछ कलुषित तथा गर्हित नहीं है। उसका एक अंश उज्ज्वल तथा प्रशँसनीय भी है। प्रसाद जी की रुचि पहले पक्ष की ओर झुकी हुई है। कदाचित इसी कारण उनके नाटकों का प्रभाव अधिक स्थायी हो सकता है। किन्तु आनन्द देने मन बहलाने और आदर्श को ऊंचा उठाने के जो साधन हैं उनकी ओर उतना ध्यान नहीं है। इसी कारण दूसरे पक्ष की अपेक्षा खटकती है। तीसरे उनकी रहस्यमयी उक्तियोंका अनावश्यक प्रयोग उनके भाव को स्पष्ट नहीं होने देता उन्हें अपूर्ण तथा अस्पष्ट छोड़ ही देता है।

उनके नाटकों से ज्ञात होता है कि उनका हृदय समुद्र के अथाह अन्तस्थल की तरह गम्भीर है जिससे दार्शनिक भाव उत्पन्न होते हैं तथा बाह्य रूप किरणों की भाँति क्रीड़ामय है।

जिससे वह अपनी रचनाओंमें रस सरिणी की उद्भावना करतेहै उनके नाटक साहित्य उद्यान की शोभा बढ़ाते हैं। उनके नाटकों में भाव व्यञ्जना बड़ी सुखद होती है। भाषा शुद्ध साहित्यक होती है। उसमें विद्वज्जनों को अत्यन्त आनन्द आता है। केवल न समझने का बहाना करके हम उनकी भाषा को दोष नहीं दे सकते। उनके पात्र वास्तव में आदर्श पात्र होते हैं।

उपरोक्त कारणोंके कारण हम प्रसादजी को सवश्रेष्ठ नाटक कार कहसकते हैं। वह सर्वोच्च कोटिके साहित्यक नाटककार है।

Q. 30. "State your opinion upon the songs of the drama Skund Gupta.'

Ans. प्रसादजी के गीतों के भाव बड़े गम्भीर हैं। उनके नाटक के पात्रों के चरित्र जितने गूढ़ हैं उतने ही गीतों के भाव भी गहन हैं। नैतिक उपदेश के लिये न लिखे जाकर, अवसरोप-युक्त न होकर, घटनाओं के घात प्रतिघात में वह गीत उनके मुख से स्वतः निकल पड़ते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गीत नाटक की दृष्टि से ही नहीं रचे किन्तु पूर्व के रचित गीत उठाकर नाटक में रख दिये गये हैं। गीतों के भाव कई स्थानों पर कठिन हैं। उनके समझने में बड़ा प्रयास करना पड़ता है। कहीं कहीं उनमें व्याकरण की त्रुटि है। जैसे—

"हृदय धूलमें मिला दिया है। खिलेफूल सब गिरा दिया है।"
यहां दिया के स्थान पर दिये होना चाहिये।

Q. 31 Briefly trace the development and origin of Hindi Dramas.

Ans. नाटक शब्द संस्कृत की नट् धातुसे निकलता है। जिस का अर्थ नृत्य अथवा नाच होता है। नृत्य नाटक का मुख्य अङ्ग है। इसको 'रूपक' भी कहते हैं। नाटकके पात्र जैसा भी नाटक

खेलते हैं वैसा ही रूप धारणकर लेते हैं। यदि महाभारत नाटक खेलना है तो कोई अर्जुन का रूप धारण करेगा, कोई द्रोपदी का कोई दुर्योधन का तो कोई वीर अभिमन्यु का अर्थात वैसा ही रूप करने को रूपक कहते हैं। इसी कारण नाटक का नाम रूपक पड़ा।

काव्य दो प्रकार का होता है—श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य नाटकको दृश्य काव्य कहते हैं। क्योंकि इसका अभिनय रंगमँच पर होता है। रंचमंच एक ऐसी अपूर्व प्रयोगशाला है। ऐसी अद्भुत प्रदर्शनी है जहाँ गद्य, पद्य, सँगीत, नृत्य, वाद्य, संभाषण भाव प्रकाशन, कौशल, चित्रकारी आदि कलाओं का विकाश तथा सभ्यता सामाजिकता एवं मानवता के आदर्श का प्रचार एक ही स्थान पर कर दिया जाता है। रंगमच केवल विनोद की सामग्री नहीं, साहित्य की कसौटी और उसकी प्रगति का मनोरञ्जक उपयोगी साधन भी, नाटक का सौन्दर्य इसी मंच पर निखरता है। इसी कारण नाटक को दृश्य काव्य कहते हैं।

नृत धातु से ही नट तथा नाटिका शब्द निकले हैं। नाटक में सर्व प्रथम नृत्य था। पुनः कथोपकथन जोड़ा गया है। यात्राओं के अवसर पर पारस्परिक वार्तालाप तथा नृत्य होता था। यवनिका शब्द यूनान से लिया गया है। संस्कृत के अनुसार नाटकों की सृष्टि दैवी है। देवों का समूह ब्रह्मा जी के समीप गया और प्रार्थना की कि कोई ऐसी वस्तु सृजन की जाय जिससे नेत्रों को तथा कर्णों को समान आनन्द प्राप्त हो। ब्रह्मा ने नाट्यवेद नामक पांचवाँ वेद तभी निर्माण किया। जो चारों की भाँति केवल ब्राह्मणों तक सीमित न रहा इसे शूद्र भी देख और सुन सकते थे। इस नाट्य वेद में इतिहास के साथ शिक्षा भी मीश्रित थी अर्थात नाटक का कथानक शिक्षाप्रद होता है।

ऋग वेद से कथन, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अनुकरण

तथा अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद नाट्य का निर्माण हुआ ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा को नाट्यशाला बनाने की आज्ञा दी भरत मुनि को इस नाट्य कला का प्रदर्शन करने की आज्ञा प्रदान की गई। इसी कारण भरत ही नाटकों के पिता माने जाते हैं। शिव ने इस नाट्यशास्त्र को ताण्डव नृत्य दिया, पार्वती ने 'लास्य' नामक कोमल नृत्य तथा विष्णु ने नाटकों की चार शैलियाँ प्रसारित कीं। भरत को इस दैवी रचना को नाट्य शास्त्र के रूप में पृथ्वीपर अवतारित करनेकी आज्ञा प्रदान की गई। कथोपकथन हमें ऋगवेद में बहुत मिलते हैं। यम और यमी, पुरुरवा तथा उर्वशी अगस्त तथा लोपमुद्रा के कथोपकथन इसके प्रमाण हैं।

प्राचीनकाल में कठपुतली वाले डोरेसे पुतली बाँधकर नचाते आये हैं। उसीसे सूत्रधार बना है। नाटक के सूत्र को धारण करने वाले को अर्थात नाटकके संचालन करने वाले को सूत्रधार कहते हैं।

अरस्तू तथा भरत ने कहा है— "लोकवृतानुकरणं नाट्यम्" अर्थात लोक की वृत्ति का अनुकरण करना ही नाटक है। कथोपकथन नृत्य और सङ्गीत नाटक के मूल तत्व हैं। वस्तु, नेता और रस मुख्य तत्व हैं।

वस्तु दो प्रकार की होती हैं— अधिकारिक और प्रसंगिक। नाटक की पांच मुख्य सीढ़ियाँ होती हैं। आरम्भ, यत्न, प्रप्राशा, नियताप्ति और फलागम।

नेता चार प्रकार के होते हैं— धीरोदात्त, धीर ललित धीर प्रशान्त और धीरोद्धत। इनमें धीरोदात्त सर्वश्रेष्ठ होता है। वह विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, पवित्र, संयमी, सद्वंशी तथा युवा होता है। वह बुद्धिमान, उत्साही, वीर, चतुर, कलावान गौरवशील होता है। नाटकों में नायक के विरोधी को प्रतिनायक कहते हैं।

नाटक की नायिकायें तीन प्रकार की होती हैं।

(१) स्वीया अर्थात नायक की विवाहित पतिव्रता स्त्री जैसे सीता। (२) अन्या अथवा परकीया दूसरे की स्त्री वा वेश्या जैसे मृच्छकटिक में बसन्त सेना। (३) परकीया, दूसरों के वश में रहने वाली।

वस्तु का एक भाग सूच्य होता है अर्थात वास्तव में मंचपर न दिखाकर केवल दर्शाया जाता है। जैसे चुम्बन, भोजन आदि मंच पर वर्जित है वह सूचित करती जाती है। बहुत सी बातें जैसे पवन में उड़ना आदि भी सूच्य है क्यों कि यह घटनायें वास्तव में नहीं दिखाई जा सकतीं। दूसरी बातें दृश्य श्रव्य होती हैं वह सुनी भी जाती हैं और देखी भी। नाटक के पीछे के भाग को नेपथ्य कहते हैं। अङ्क के अन्त में दूसरे आगामी अङ्क की सूचना अङ्कास्य है।

वस्तु के अन्य भी तीन भाग हैं— (१) श्राव्य वा प्रकाश जिसे सब सुनते हैं। (२) अश्राव्य अर्थात स्वगतोक्ति जो पात्र मन ही मन में कहते हैं अर्थात दर्शक सुन तो लेते हैं किन्तु पात्र किसीको सम्बोधित करके नहीं कहता। (३) नियति श्राव्य जिसे इनगिने व्यक्ति सुन सकें। इसके अतिरिक्त आकाश भाषित या आकाशवाणी भी हुआ करती है। जो दैवी समझी जाती है।

वस्तु नाटक का स्थूल शरीर है, रस उसकी आत्मा है और नेता उसकी वाणी। अधिकारिक इसी कारण नाटक में आदि से अन्त तक रहती है और प्रासाँगिक बीच बीच में आ कर मिलती रहती है।

हिन्दी में नाटकों के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हैं। किन्तु इनसे पहले इन्हीं के पिता बाबू गोपालचन्द्र का 'नहुष' नामक नाटक प्राप्त है। यह नाटक व्रजभाषा में है। खड़ी बोली

में तो नाटकों के पिता हरिश्चन्द्र ही हैं। हिन्दी में सर्व प्रथम इन्होंने ही मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों की सृष्टि की। एक बार भारतेन्दु जैसा जनक पाकर नाटक नवजात शिशु बढ़ने लगा। भारतेन्दु का जन्म सं० १९०७ में हुआ था। इस भारत के इन्दु ने कविता आदि के साथ साथ नाटक जगत को भी अपनी रजत रश्मियों से उज्वल बनाया। वाग्वाणी सरस्वती ने शङ्कर प्रिय काशी जैसे पुण्य स्थल में अत्यन्त प्रखर प्रतिभा शालिनी तथा ओजस्विनी बुद्धि वाले इस पुत्र रत्न को उत्पन्न किया। इन्होंने सब प्रथम संवत १९२५ में 'विद्यासुन्दर' नामक नाटक का बंगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया।

संवत १९३० से इन्होंने मौलिक नाटक नाटिकाओं की रचना की जिनमें 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कर्पूर मञ्जरी सत्य हरिश्चंद्र, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी, नीलदेवी, चन्द्रावलि आदि उल्लेखनीय है। यूनानियों की उक्ति "Those whom the lord loves die young" के अनुसार इश्वर का प्यारा भारतेन्दु शीघ्र ही संसार वाटिका से चुन लिया गया। १८ वर्ष के साहित्यिक जीवन में १६० ग्रंथों का सम्पादन करके ३४ वर्ष की युवावस्था में नाट्यकला का वह कलाधर हिन्दी नाट्यकला को रुदन करता छोड़ अपनी उज्वल धवल अक्षय यश चन्द्रिका स्थापित कर तिरोहित हो गया।

हरिश्चन्द्र ही के समकालीन उनके अन्य मित्रों ने अपने इस भ्रातृव्य नाटक शिशु को पुष्ट करना, पालन पोषण करना आरम्भ कर दिया। श्रीनिवासदास ने इन्हीं दिनों 'रणधीर' प्रेममोहिनी द्वारा उसके अङ्गों को विस्मृत किया। केशव भट्ट ने इस शिशु के विनोद के लिये 'सज्जाद सम्बुल' का गुल खिलाया। फिर क्या था जब इस प्रकार खिले गुलों की सुगन्ध लेने लगा तो

बद्रीनारायण जी चौधरी ने 'भारत सौभाग्य' द्वारा उसके भावी सौभाग्य की सूचना दी। तोताराम, पण्डित बालकृष्ण भट्ट तथा पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास ने अपनी विस्तृत तथा बड़े आकार की रचनाओं द्वारा उसके लिये खेलने कूदने तथा धावन के लिये एक बड़ा भारी मैदान बनाया। राधाकृष्णदास, प्रताप नारायण, राधाचरण, गोस्वामी आदि ने तो अनुवादित नाटकों द्वारा केवल उसकी बाढ़ी को बढ़ाया। जिससे वह मोटा दिखाई पड़ने लगा। इधर काशी निवासी बाबू राधाकृष्ण वर्मा ने बङ्गला से 'वीर नारी' 'पद्मावती' 'कृष्णाकुमारी' आदि नाटकों का अनुवाद करके उसी बाढ़ी के चलते पहिये में हाथ लगा दिया। अब कुछ महानुभावों ने इसे चलता पुरजा बनाने की सोची। बाबू गोपाल राम गहमरी ने सम्वत १९५७ ई० के पूर्व 'विद्या विनोद' 'देश-दशा' 'बभ्रूवाहन' तथा 'चित्राङ्गद' नामक नाटक बङ्गला से अनुवादित करके उसे तिलस्मी रङ्ग ढङ्ग से सजा कर रख दिये। भारत में अङ्गरेजों का पदार्पण तो हो ही चुका था। देश विदेशीय रङ्ग में रंगा जा रहा था। जब सभी पर अङ्गरेजी का प्रभाव था। तो भला नाटक भी उससे शून्य क्यों रहता। तुरन्त पुरोहित गोपीनाथ एम०ए० ने शेक्सपियर के कुछ नाटकों का अनुवाद कर डाला। कुछ मनुष्य जो स्वदेशी विचार के थे तथा इसे मातृभाषा से हटाना पसन्द न करते थे। उन्होंने पहले ही से कुछ संस्कृत नाटकों का अनुवाद कर डाला था। जिनसे राजा लक्ष्मणसिंह का 'शकुन्तला' का अनुवाद तथा अवध निवासी राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने 'मेघदूत' 'नागनन्द' 'मृच्छकटिक' 'महाबीर चरित्र' 'उत्तर रामचरित' 'मालती माधव' और 'मालिवीकाग्निमित्र' आदि सभी प्रसिद्ध संस्कृत नाटकों का अनुवाद कर डाला। सम्बत १९७० में आगरा निवासी कविरत्न पण्डित सत्यनारायण जी ने भवभूति के 'उत्तर

रामचरित' तथा 'मालतीमाधव' नामक दो नाटकों का अनुवाद किया। जो भूप जी के अनुवाद से कहीं उत्कृष्ट था। जब नाटक बाहरी बादी से ही मोटा हो रहा था तो उसमें कुछ वार्त्तविक जान भी डालने के लिये कानपुर के प्रसिद्ध विद्वान राय देवीप्रसाद पूर्ण ने 'चन्द्रकला भानुकुमार' नामक एक मौलिक नाटक लिखा।

इसके उपरान्त पण्डित रूपनारायण पाँडेय तथा नाथूराम प्रेमी आदि ने गिरीष घोष, बङ्किमचन्द्रचटर्जी तथा द्विजेन्द्रलाल राय आदि बङ्गला के प्रमुख नाटककारों के नाटकों का अनुवाद किया। पण्डित रूपनारायण पाँडेय ने कवीन्द्र रवीन्द्र के 'राजा रानी' नाटक का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया।

इन्हीं दिनों हिन्दी संसार में स्टेजों की धूम धाम होने लगी। बहुत सी नाटक मण्डलियाँ बनकर तैयार होने लगीं। श्री विश्वम्भरसहाय व्याकुल ने मेरठ में व्याकुल कम्पनी खोली। उन्होंने स्वयं उसके लिये बड़े २ सुन्दर अभिनेय नाटक लिखे। उनका 'गोतमबुद्ध' नाटक अभिनेय नाटकों में अपनी निराली शान रखता है। सम्वत १९६९ में पं० नरायणप्रसाद बेताब ने 'महाभारत' लिखा। इनका यह नाटक पारसी ऐलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी ने बड़े जोर शोर से खेला। जनता में जब इसकी प्रशंसा की ध्वनि गुंजारित हो गई तो 'बेताब' जी ने 'रामायण' 'पत्नी-प्रताप' 'कृष्णसुदामा' 'गणेश जन्म' आदि पौराणिक नाटक लिखे। इसी समय आगाहश्र ने 'भक्त सूरदास' नामक नाटक लिखा जो सफल अभिनेय नाटक रहा।

इसके उपरांत प० राधेश्याम कथावाचक ने व्यवसायी कम्पनियों के लिये 'अभिमन्यु' 'भक्त प्रह्लाद' 'श्री कृष्णावतार' तथा 'रुक्मणी मङ्गल' आदि विशेष प्रसिद्ध नाटकों को जन्म दिया। हरिकृष्ण जौहर ने 'पति भक्ति' तथा पँ० तुलसीदत्त शैदा

ने 'कृष्ण-चरित्र' लिखे। पं० माधव शुक्ल का 'महाभारत' भी सफल नाटक रहा।

नाटकीय क्षेत्र में जिस समय यह बाढ़ आई हुई थी उसी समय काशी सरीखे पवित्र स्थल में नाटक भागीरथी को स्वच्छ करने के लिये संवत १९४६ में बाबू जयशंकर प्रसादजी का जन्म हुआ। इन्होंने नाटकीय क्षेत्रमें नवयुग उपस्थित किया। प्रसादजी आधुनिक युग के नाटक सम्राट हैं किन्तु इनके नाटकों को अनभिनेय होने के कारण दृश्य काव्य न कहकर श्रव्य काव्य कह देना ही अधिक उचित जान पड़ता है। कुछ वर्ष पहले। पण्डित बदरीनारायण भट्ट ने लखनऊ से 'दुर्गावती' और पं० गोविन्द वल्लभ पन्त ने 'वरमाला' दो सफल अभिनेय मौलिक नाटकों की रचना की। किन्तु अब हर्ष का विषय है कि इस आर पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री वियोगी हरि, उग्र जी, आनन्दी प्रसाद श्री वास्तव, मैथिलीशरण गुप्त तथा प्रेमचन्द आदि का ध्यान भी गया है। द्विवेदी जी का नाट्यशास्त्र तथा बाबू श्यामसुन्दर दास का रूपक रहस्य इसकी रचना में सहायक लक्षण ग्रंथ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी अब नाटकीय क्षेत्र में अन्य भाषाओं से कदापि पीछे न रहेगी। इसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होगी।

Q. 32. State briefe the plot or story of the drama Skunda Gupat.

Ans. मगध का सम्राट कुमारगुप्त एक अत्यन्त विलासप्रिय राजा है। वह साम्राज्य को गले पड़ी वस्तु समझता है उसके दो रानियाँ हैं—देवकी तथा अनन्तदेवी ! बड़ीरानी महादेवी देवकी का पुत्र स्कन्दगुप्त है तथा छोटी रानी अनंतदेवी का पुत्र पुरगुप्त है। साम्राज्य पर शकों तथा हूणों के आक्रमण तो बाहरसे होते हैं इसी के साथ २ अन्तर्विद्रोह की ज्वाला भी प्रज्वलित हो

जाती है । अनन्तदेवी स्वयं राजमाता बनकर अपने पुत्र पुरगुप्त को सिंहासन दिलाना चाहती है । वास्तव में बड़ा पुत्र होने के कारण महादेवी देवकी का पुत्र स्कन्दगुप्त उत्तराधिकारी है ।

अपनी इच्छापूर्ण करने के लिये अनन्तदेवी मगध के महाबलाधिकृत भटार्क तथा कुमारामात्य सर्वनाग को अपनी ओर फोड़ लेती है । बौद्ध भिक्षुक प्रपञ्च बुद्धि भी इन विद्रोहियों की सहायता करता है । देवकी तथा कुमारगुप्त की हत्या की जाती है किन्तु स्कन्दगुप्त अपनी भुजाओंके बलसे मालवका सिंहासन भी प्राप्त कर लेता है । तथा मगध का भी । वह स्वतः अपनी स्वतन्त्र इच्छासे पुनः पुरगुप्त को टीका कर देता है और लज्जित करने के लिये अपनी सौतली माता अनन्तदेवी तथा सौतेले पुरगुप्त को विद्रोहियों सहित क्षमा कर देता है ।

इसके अन्तर्गत ही प्रेम-गाथा भी चलती है । बन्धुवर्मा मालव का राज्य विजयोपलक्ष में स्कन्द को दे देते हैं । उनकी बहिन देवसेना का विवाह स्कन्दगुप्तसे हो जाय यह उनकी इच्छा है किन्तु उस समय स्कन्द मालव के धन कुबेर की कन्या विजया को प्रेमकरने लगता है । किन्तु विजया स्कंदगुप्तको राज्यकी ओर से उदासीन सा देखकर भटार्क को प्रेम करने लगती है । स्कन्द यह देखकर देवसेना को प्रेम करने लगता है । देवसेना पहले ही से उसेप्रेम करती है । किन्तु अबयह नहीं चाहतीकि स्कन्दगुप्त को राज्य देने के बदले में वरण करके अपने भाई मृत बन्धुवर्मा की आत्मा को कष्ट पहुँचाये वह स्कन्दगुप्त की याचना को भी ठुकरा देती है । इधरजब स्कन्दगुप्त अपमानित होनेपर आजन्म कौमारव्रत ले लेता है तो विजया उससे प्रेम का प्रस्ताव करती है । परिणाम यह होता है कि स्कन्दगुप्त उसके प्रेम प्रस्ताव को पद दलित कर देता है ।

इस प्रकार दुखान्त तथा सुखान्त के बीच में नाटक की समाप्ति हो जाती है ।

Q. 33 Describe the life and attainments of Baboo Jai Shanker Prasad.

Ans. श्रीयुत जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सम्बत १९४६ में काशी के एक प्रसिद्ध धनिक तथा उच्च सद्वंश में हुआ। इनके यहाँ सुरती का बड़ा व्यापार होता आया है किन्तु व्यापार के शुष्क वातावरण में उत्पन्न होने पर भी इनके हृदय में साहित्यांकुर पड़ गया। फूलने फलनेपर आज वही हिन्दी साहित्य उद्यान की अपूर्व शोभा बढ़ा रहा है।

प्रसादजी की प्रतिभा बहुमुखी है। वे केवल नाटककार ही नहीं हैं—वह कवि, उपन्यास लेखक, कहानी लेखक आदि कई गुणों से भूषित हैं। इनकी कवितायें झरना तथा आँसू के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके उपन्यास कङ्काल ने प्रकाशित होते ही उपन्यास क्षेत्र में नई हलचल मचा दी।

इनकी 'तितली' भी प्रकाशित हो चुकी है। बनारस में सुरती तथा तम्बाकू के बड़े व्यापारी सम्पन्न गृह में उत्पन्न होने के कारण इन्हें धन की अधिक चिन्ता नहीं रहती। सदैव प्रसन्न चित्त रहकर प्रफुल्लता से साहित्यक रचनाओं में संलग्न रहते हैं प्रसाद जी बड़े अध्ययनशील हैं। इनकी निज की एक बहुत बड़ी Library (पुस्तकालय) है। इनके उपन्यासों में भावों की उच्चता तथा आदर्शता का पूर्ण परिचय मिलता है। अपने गद्य काननमें ये स्वयं विचरते हैं। कुछ नाटकीयगीत ऐसे भी हैं जिन्हें वे स्वयं ही समझ सकते हैं। प्रसाद जी की रचना शुद्ध तथा व्याकरण सम्मत होती है। उनके नाटकों में नाटकत्व रहता है। घटना ऐक्य, घटना की सार्थकता, घात प्रति घात गति, कवित्व, चरित्र चित्रण तथा स्वाभाविकता उनके नाटकोंमें पाई जाती है। अस्तु आदर्श की दृष्टि से सुखान्तता भी उनके नाटकों में रहती है। इनके अधिकाँश नाटक ऐतिहासिक होते हैं। इन्होंने प्राचीन इतिहास का अच्छा अध्ययन किया है। वे स्वयं अपने नाटकों में खेलते दिखाई पड़ते हैं।

उनकी कृतियाँ मौलिक, महत्वपूर्ण तथा उत्कृष्ट हैं। इनकी साहित्यक कृतियां वर्तमान ही की नहीं, भविष्य की उपयुक्त सामग्री हैं। साहित्य की भारी पूंजी हैं। वह स्वयं हिन्दी की भावी आशा हैं। हिन्दी जगत के लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। नवीन छायावादी युग के प्रवर्तक हैं। वह भावी उच्च साहित्य के विधाता भी हैं। इनकी भाषा संस्कृत गर्भित होती है। वह कहीं कहीं भावों समेत बड़ी प्राञ्जल क्लिष्ट तथा दुसह हो जाती है। उनके विचार अत्यन्त गूढ़ तथा गम्भीर होते हैं। अपनी मुक्त विचारधारा एवं भाषा प्रवाह में पड़कर वह पाठकों की रुचि को भुला देते हैं।

उनके नाटक निस्सन्देह उच्च कक्षाओं के योग्य साहित्यक नाटक होते हैं। किसी किसी ने उनपर एतिहासिक नाटक लिखने के कारण 'गढे मुर्दे उखाड़ने' का दोष लगाया है। किन्तु हम इसे उन महानुभावों की बुद्धिमानी ही कहेंगे। हमें भय है कि यदि उनके मत वालोंकी संख्या और बढ़ गई तो वह प्राचीन साहित्य को जिसका मूल्य स्वतन्त्रता से बढ़कर है समूल नष्ट करने का प्रयास करें। वह कब्र ही न बनने देंगे जिसमें से मुर्दे उखाड़ने का किसी को अवसर मिले।

प्रसाद जी पर हर श्रेणी के मनुष्य कुछ न कुछ कह दिया करते हैं। इनकी भाषाको तो संस्कृत गर्भित तथा क्लिष्ट कहाही जाता है। उसमें व्याकरण का अभाव भी बतलाया जाता है। जिससे वह विद्यार्थियों की बुद्धि को व्यग्र किया करते हैं। छाया वादी भी उन्हें कलित क्लिष्ट बताते हैं। दुसहता का अभियोग उन पर चारों ओर से लगाया जाता है। किन्तु वास्तव में बात यह है कि श्रीयुत प्रसाद जी आर्य संस्कृति के भक्त हैं। उनके विचार गूढ़ तथा गम्भीर होते हैं। संस्कृत का भी विद्वान होने के कारण उनकी भाषा संस्कृत गर्भित हुये बिना नहीं रहती। अतएव छोटी कक्षाओं तक पढ़े लिखे मनुष्य ही उनके विषय में ऐसा कहते हैं। किन्तु विद्वत्समूह उनके मूल्य को जानता है।

प्रसाद जी साधारण जनता की समझ के कारण अपनी युक्त विचार धारा को अवरुद्ध नहीं कर सकते। उनकी प्रतिभा बन्धन स्वीकार नहीं करती। उनके सम्बन्ध में कोई कुछ भी आलोचना करे किन्तु वह एक बार विचार विभोर होकर, तरङ्गित होकर वैसे ही रूप में उन्हें निष्कपट रूप से प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। जहां वह कठिन भाववाचक संज्ञाओं का जैसे सामित्व, करुणापूर्ण आदि का प्रयोग करते हैं। वहां 'जमा खर्च, खूब, लायक' आदि उर्दू के शब्दों का भी।

उनके विचार मनुष्योंको उच्च विचारों की ओर ही अग्रसर करते हैं। उनके नाटक स्कन्दगुप्त में रहस्यात्मक उक्तियों के साथ आँख मिचौनी खेलने का भी दोष बताया जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि स्कन्दगुप्त में वीर रस प्रधान है। वीर रस का रहस्यवाद से विरोध है। अतः उनके इस नाटक में रहस्यवाद का होना असंभव है।

प्रसाद जी वास्तव में हिन्दी-उद्यान के एक महकते पुष्प हैं। एक होनहार बिरवा है।

"SOME SUGGESTIVE QUESTIONS".

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हमारे पूर्व लिखित प्रश्नोत्तरों में से प्राप्त हो सकते हैं।

1. "Skunda Gupta's character is curious blending of a King and an ascetic". Discuss. Do you agree with the depiction in the drama ?
2. "Prasad could not give sufficient display of his dramatic genius and also could not easily understand the sentimental (भावुक) portions of our Drama". How much do you differ from the question ?
3. Differentiate between the loves of Vijaya and Devasena.
4. Show that Skunda Gupta is a love-tragedy".
5. Prasad has endeavoured to portray in the drama a fight between truth and falsehood in the kingdom as also a patriotic fight between the Indians and foreigners". Discuss with reference to incidents.
6. Prove that Bandhu Verma's patriotism and त्याग has a more dignified source inspiration than Skunda's देशभक्ति
7. "Frality thy name is woman". How far the blame of Catestrophe goes on the heads of women in the drama !
8. "Bhatarka is ferocious force and a powerful element in the enemy's camp". How far he tried to furtile the attempts of Skunda in checking the tide of foreigners ?
9. Matra Gupta has an unnecessarily lengthy part in the drama". State your opinion.
10. "Character contrast is novelty in Hindi drama". Discuss with reference to Skunda Gupta.
11. "There is very little scope for character study in the field of Hindi drama". Substantiate

12. "Idealism of character has a certain limit beyond which an ideal picture ceases to be a living picture". Discuss Skunda's character in the light of the above.
13. Prasad, the man and poet is inseparable from Prasad the dramatist". Discuss from Skunda Gupta.
14 How far Skunda Gupta is a piece of art ?
15. "There is a curious blending of realism and romance in Skunda Gnpta".
16 "What is the place of songs in a drama ? How far Prasad has been success ful in his songs as the property of the drama" ?
17. How far Prasad is a humourist ? What new departure had he made in the representation of clowns ?
18. स्कन्दगुप्त का आधार ऐतिहासिक घटनाओं पर कितना अवलम्बित है ?

Discuss the historical back ground of Skunda Gupta.
19. The main object of the writer in writing the drama is the spreading of Budhism. How far is it right looking to the incidents in the drama ?
20. ऐतिहासिक कथानकों का चित्रण गड़े मुर्दे उखाड़ना है। Discuss.
21. What is Prasad Ji's conception of court clowns ? How far do you agree with him ?
22. "Prasad's plays are but poems of the new mystic school recited on the stage. Discuss".
23. "Skunda Gupta is both a tragedy and a comedy". Justify the remark.
24. "Mastery of psychological ideas is displayed from the very expositon of the drama."

25. Write an application of the language of the drama.
26. Discuss the propriety of the parts taken by Buddhist monks and priests in the drama.
27. What means can be suggest to give impetws to the production of original drama in Hindi ?
28. What are causes for the backwardness of Hindi drama ?
29. "नाटकों के गम्भीर पात्रों के उद्गार सुनने में पाठशाला में पाठ सुनने का सा आनन्द आता है।" Discuss with reference to स्वगतोक्तियां (soliloquies) in the drama
30. नाटकीय पात्रों के चरित्र जितने गूढ़ हैं। उतने ही गीतों के भाव भी गहन हैं।" Remark.
31. 'स्कन्दगुप्त' का भाषा परिपक्व होते हुये भी परिष्कृत नष्ट है।" Comment.
32. "घटनाओं के घात प्रतिघात में नैतिक उपदेश स्वतः पात्रों के मुख से निकल पड़े हैं"।
Justify the above with quotations.
33. "नाटक में जीवन सम्बन्धी वाक्य बड़े मार्मिक हैं"। Quote.
34. "चरित्र चित्रण प्रसादजी का अनोखा होता है"। उदाहरण सहित व्याख्या करो।
35. Show that equal attention is paid to adore action of language and ideas in the drama."
36. "उनका हृदय समुद्र के अथाह अन्तस्थल की भाँति गंभीर तथा बाह्यरूप लहरों का भांति क्रीड़ामय है"। प्रसाद जी के सम्बन्ध में उक्त धारणा से आप कहाँ तक सहमत हैं।
37. "What ideas of Prasad Ji about poetry can you judge from the drama"? Give illustrations and quotations
38. "जयशङ्कर प्रसाद जी की भाषा, दुसह, क्लिष्ट तथा व्याक-

च्युत है। is it right to what extent

39. "नाटक संगीत का सत्य स्वरूप, मानवता का मानचित्र तथा देश का दर्शनीय दर्पण है"।
How far Skunda Gupta fulfills the above ?

40. Discuss the style of Prasad ji in the drama of Skunda Gupta.

41. "Skunda Gupta is not a dry analysis of philosophical discourses but a art." Elaborate this remark.

42. Show that the drama of Skunda Gupta is a harmonious blending of prose and poetry.

43. 'Style is the men." (शैली में शैलीकार निहित रहता है). Elucidate with reference to Skunda Gupta.

44. Estimate the success achieved by Jai Shanker Prasad as a dramatist. State the short-comings if any.

45. What roll would you assign to B. Jai Shanker Prasad amongst Hindi dramatists. Has he made any new departure ? If so in what direction and with what success.

46. How far Skunda Gupta fulfills the essential of a drama ? State briefly.

47. Show that Prasad ji has changed the style of his dramas according to the time. Is he influenced by the West in any way ?

48. "His prose is but a poetry", are there portions of prose in Skunda Gupta which justify the remark ?

49. What philosophy of life are there depicted in the drama ? Does it throw any light on the author ?

50. Do you find mys[illegible] prose or poetry composition [illegible] illustrate your answer.